RESURRECTION OF DHARMA

धर्म का पुनरुत्थान

एक आंदोलन • एक अभियान

गौवंश (नन्दी-नंदिनी : गाय-सांड)

की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए

गौवंश से जुड़े हुए विषय पर
स्वयं प्रकाशित पुस्तकों से
कुछ महत्वपूर्ण आलेखों का संकलन

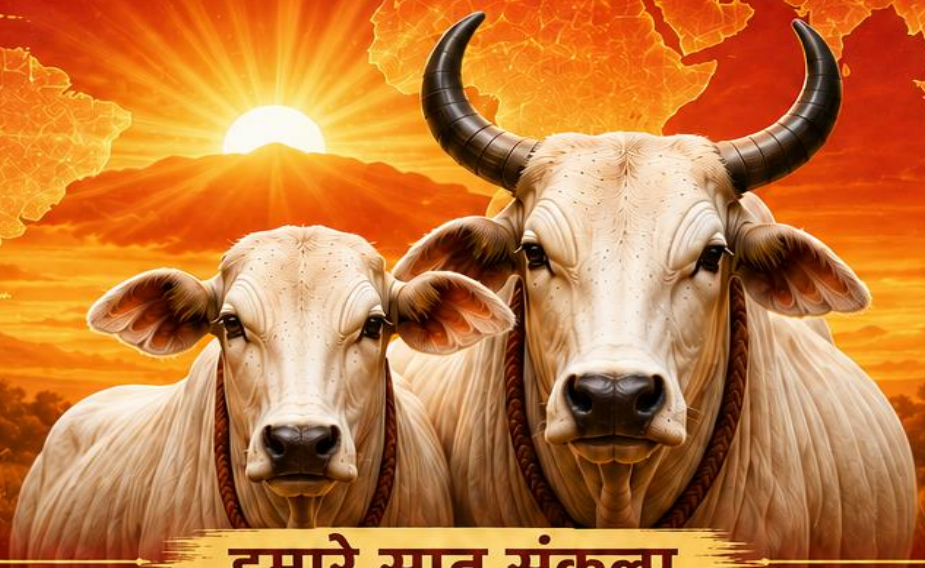

हमारे सात संकल्प

1. वयस्कों में दूध एवं दुग्धयुक्त चाय-कॉफी के सेवन में कमी
2. ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन के प्रयोग पर रोक
3. मांस, हड्डी एवं स्क्त्युक्त (Non-Veg) पशु आहार पर रोक
4. नंदी के बधियाकरण की प्रथा का अंत
5. सार्वजनिक कार्यक्रमों में दूधयुक्त पेयों का विकल्प
6. कृत्रिम गर्भाधान के स्थान पर प्राकृतिक प्रजनन को बढ़ावा
7. इलेक्ट्रॉनिक वियिंग एवं रेडियो-टैगिंग का विरोध

मुख्य प्रचारक
श्री नरेंद्र

प्रकाशक
बंदना चौधरी

website:
resurrectionofdharma.com

यूट्यूब चैनल:
'Narendra Kumar Agrawal Fans Club'

प्रकाशक : बंदना चौधरी

website:resurrectionofdharma.com,

यूट्यूबचैनल: 'Narendra Kumar Agrawal Fans Club'

प्रथम प्रकाशन: 18.06. 2026, भारत

प्रकाशक:बंदनाचौधरी

तरवा, मझौलिया

मुजफ्फरपुर, बिहार, पिन-843122, भारत

वेबसाइट: resurrectionofdharma.com,

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
1	इस संकलन के बारे में	4
2	आंदोलन का औपचारिक विवरण	5-6
3	भारत के माननीय राष्ट्रपति को भेजे गए पत्र की प्रति	7
4	भारत के राष्ट्रपति कार्यालय से प्राप्त पावती (स्वीकृति)	8
5	वैकल्पिक अर्थव्यवस्था ('ऑल्टरनेट इकॉनमी') पुस्तक की प्रस्तावना,	9-11
6	पवित्र गाय - मीता-जीवन शैली प्रारूप पुस्तक का एक विषय	12-14
7	“डिविनक्रेसी (डिवाइन डेमोक्रेसी)" किताब के अध्याय: भारत की स्थिति: धार्मिक व्यवस्था",से कुछ अंश	15-16
8	"गाय और नंदी (बैल) की स्थिति हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करती है" - 'भारत की नज़र में वैश्विक व्यवस्था' पुस्तक का परिशिष्ट	17-23
9	धर्म, धर्म संस्थान और राजनीति क्या हैं? - 'ऑल्टरनेट इकॉनमी' पुस्तक से अंश	24-26
10	कविता, धर्यते इति धर्म' किताब से	27
11	अलग-अलग धर्मों में विवाद का विषय (धर्म की क्षेत्रीय मुक्ति), किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी' (Alternate economy) से अंश	28-33
12	सबसे अच्छी शासन व्यवस्था क्या हो सकती है?, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी' से अंश	34
13	सामाजिक सुरक्षा की अर्थव्यवस्था और अर्थव्यवस्था की सामाजिक सुरक्षा, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी' से अंश	35-37
14	खुला पत्र संख्या- 38, 42, 49, 47, 26 और एक विशेष पत्र, किताब “काम की बात” (जल, ज़मीन, जंगल पर)	38-43
15	एग्रोनॉमी - कृषि-संस्कृति का अर्थशास्त्र या सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी-नेचुरल सिस्टमैटिक इकॉनमी' से	44-49
16	स्वच्छ और स्वास्थ्यकर अर्थव्यवस्था और स्वच्छता व स्वास्थ्य का अर्थशास्त्र, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी-नेचुरल सिस्टमैटिक इकॉनमी' से,	50-55
17	बीफ़ (गोमांस) की तेज़ी वाली अर्थव्यवस्था और गाय व बधिया किए गए बैल का अर्थशास्त्र, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी-नेचुरल सिस्टमैटिक इकॉनमी' (भारतीय समाज के लिए एक आर्थिक एजेंडा- घोषणापत्र) से	56-64
18	नरेंद्र कौन हैं? आंदोलन के सूत्रधार	65-67
19	किताब 'परांजलि' से एक कविता***	68

1- इस संकलन के बारे में

- **निम्नलिखित प्रस्तुत है:**

1. भारत और दुनिया भर में गो-वंश (नंदी/सांड और नंदिनी/गाय) की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक आंदोलन या अभियान के समर्थन में कुछ बातें पेश की गई हैं। इस अभियान की घोषणा 30 मई, 2026 को दिल्ली, भारत से श्री नरेंद्र (resurrectionofdharma.com) द्वारा की गई थी और इसका लक्ष्य 31 दिसंबर, 2027 तक पूरा करना है। इस पुस्तिका में कुछ बुनियादी सवालों के जवाब देने की कोशिश की गई है, जैसे: भारत और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गो-वंश (नंदी-नंदिनी: गाय और सांड) की सुरक्षा क्या है, क्यों और कैसे की जाए; इसके लिए अर्थव्यवस्था, न्यायपालिका और प्रशासन में किस तरह के बदलाव की ज़रूरत है; और इस काम की तत्काल आवश्यकता क्यों है।

2. इस पुस्तिका में हमारे इन-हाउस पब्लिकेशन से गाय वंश और उससे जुड़े मुद्दों पर निम्नलिखित पुस्तकों जैसे; काम की बात [काम की बात (पानी, ज़मीन और जंगल पर)], मीता-जीवन शैली प्रारूप, परांजलि, धार्यते इति धर्म, डिविनक्रेसी (डिवाइन-डेमोक्रेसी), वैकल्पिक अर्थव्यवस्था, भारत की नज़र में वैश्विक व्यवस्था", के कुछ भाग उद्धृत किये गए है।

3. गाय वंश और अन्य विषयों पर श्री नरेंद्र के वीडियो देखने के लिए कृपया यू ट्यूब चैनल 'Narendra Kumar Agrawal Fans Club' को सब्सक्राइब करे :

,

उपरोक्त प्रस्तुत है,
भगवान हम पर कृपा करें,

बंदना चौधरी

2- एक आंदोलन, एक अभियान गौवंश (नन्दी-नंदिनी:: गाय - सांड, Cow-Bull) की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए

लक्ष्य: 31 दिसंबर 2027 तक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गौवंश की सुरक्षा सुनिश्चित करना:-

इस निवेदन, अभियान, आंदोलन, अपील के मुख्य सात संकल् निम्नलिखित हैं:-

1 वयस्कों द्वारा दूध और दूध वाली चाय और कॉफ़ी के सेवन को बंद कराना

दूध प्रकृति का वरदान शिशुओं और उनके लिए है जो दूध के अतिरिक्त कुछ भी पचा नहीं सकते। - इससे गाय- भैंस और इसके साथ साथ घाँस, चीनी, चाय पत्ती, कॉफ़ी सीड्स, अदरक के उत्पादन पर दबाब काम होगा, जो जगह बचेगी वहां वृक्ष लगाने से पर्यावरण में सुधार होगा।

2. ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन पर रोक लगाना

आसानी से दूध निकालने के लिए प्रयुक्त ऑक्सीटोसिन गाय-भैस को रोगी और विषैला बनाता है। इससे दूध, गोमूत्र, गोबर प्रयोग करने वाले लोग बीमार होते हैं यहाँ तक की ऐसी मरी हुयी गाय भैंस को खाने के कारण से गिद्ध भी लगभग खत्म हो गए।

3. नॉन-वेज मिल्क के उत्पादन को बंद कराना

गाय भैंस को चारे के रूप में मांस, हड्डियों, या खून (ब्लड मील) देने को बंद कराना। इस तरह का चारा खिलाने से गाय भैंस में शारीरिक एवं मानसिक विकृति की उत्पत्ति होती है जिससे इनमे एवं इनके द्वारा दिए हुए दूध के पीने से इंसानो में पागलपन एवं अन्य लाइलाज बीमारियों पैदा होती है।

4. नंदी का बधियाकरण करना बंद कराना

नंदी की शक्ति प्रकृति का वरदान है उसे वधिया करके बैल बनाने से नंदी -नंदिनी वंश का श्राप हमारे ऊपर आया है, हमारा सारा खाना एवं दूध श्रापित हुआ है, इस कारण हम गुलाम भी हुए और अब भी गुलामी की तरह ही जी रहे है। वधियाकरण बंद करने से, गोवंश के सम्मान करने से हमारे पाप धुलेंगे और हममे खोयी हुयी शक्ति का पुनः संचार होगा।

5.घरों, बैठकों, सेमिनारों, प्रवचनों एवं अन्य सार्वजनिक कार्यक्रमों से दूध, एवं दूध से बानी हुयी चाय, कॉफी को स्वागत पेयके श्रेणी से हटाना

बैठकों, सेमिनारों, प्रवचनों में दूध की चाय-कॉफी परोसने से डेयरी को बढ़ावा मिलता है, जिससे ज्यादा गोवंश, घांस, चीनी, चाय पत्ती, कॉफ़ी की जरुरत होती है, जिसके लिए ज्यादा जमीन की जरुरत पड़ती है, गोवंश का वध बढ़ता है, समाज में शारीरिक एवं मानसिक विकार बढ़ता है एवं सम्पर्ण पर्यावरण पर खराब होता है ।

6. गायों और भैंसो में वर्तमान में व्याप्त कृत्रिम गर्भाधान को बंद कराना,

कृत्रिम गर्भाधान प्रकृति के विरुद्ध है, नंदी और भैंसा को गैरजरूरी बनाना प्रकृति में असन्तुलन पैदा करना है,। यदि यह प्रक्रिया जारी रही तो आने वाले समय में महिलाओं में भी कृत्रिम गर्भाधान कराया जा सकता है पुरुषों को अनावश्यक किया जा सकता हैं, ऐसा करना प्रलय लाने जैसा होगा।

7 .गायों और भैंसों में इलेक्ट्रॉनिक चिप लगाने की प्रक्रिया को बंद कराना

इलेक्ट्रॉनिक/रेडियो-एक्टिव चिप से बीमारियां फैलती हैं और उनमे इलेक्ट्रॉनिक चिप के माध्यम से कोई भी गुण - अवगुण, स्वास्थ्य या बीमारियां पैदा की जा सकती है जो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है, गायों और भैसो में इलेक्ट्रॉनिक चिप इंसानो में भी चिपिंग की शुरुआत होती है जो वैश्विक विध्वंस लायेगी ।

समायोजन अवधि: 31 दिसंबर 2027 यह डेढ़ वर्ष का समय - हमें (सभी नागरिकों को) इन वास्तविकताओं के अनुकूल होने के लिए समय है।

हमारा संकल्प: गोवंश की सुरक्षा
धर्म का पुनरुत्थान, दुष्टों का विनाश, सज्जनो/ का उत्थान। धर्म संस्थानों की स्थापना।

अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट: resurrectionofdharma.com, से पुस्तकों को पढ़े, वीडियो को देखे और ताज़ा जानकारी के लिए सोशल साइट से जुड़ें।

निवेदनकर्ता: नरेंद्र (वेबसाइट: resurrectionofdharma.com)
दिनांक: 30 .05 .2026, स्थान: दिल्ली, भारत

3- भारत के माननीय राष्ट्रपति को भेजे गए पत्र की प्रति

Narendra kumar Agarwal <narendrakumara134@gmail.com> 31 May 2026, 18:31

सेवा में,
महामहिम द्रौपदी मुर्मू
भारत की राष्ट्रपति,
राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली - 110001, भारत

विषय यह आपकी जानकारी के लिए कि हम एक "एक आंदोलन , एक अभियान गौवंश (नंदी -नंदिनी:: गाय -सांड,Cow-Bull) की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए", में भाग ले रहे है और आप से आग्रह है की आप इस पर सरकार को समुचित निर्देश दें - के संदर्भ में
(पत्र का अंग्रेजी अनुवाद मूल लेख हिंदी के बाद दिया है)

माननीय महामहिम द्रौपदी मुर्मू जी,
इस विषय पर लिखा एक पत्र, जिसे भारत के साथी नागरिकों के साथ भी साझा किया गया है, आपकी अवलोकनार्थ एवं उचित कार्यवाही हेतु नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।
उपरोक्त सादर प्रस्तुत है।
आदर एवं शुभकामनाओं सहित,
ईश्वर हम पर कृपा करें,

भवदीय,

नरेंद्र
धर्म के पुनरुत्थान हेतु
वेबसाइट: resurrectionofdharma.com,
न्यू राजेंद्र नगर, नई दिल्ली - 110060, भारत | दिनांक: 31.05.2026
संलग्नक: विषय पत्र
एक आंदोलन, एक अभियान गौवंश (नन्दी-नंदिनी:: गाय -सांड,Cow-Bull) की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए

4-भारत के राष्ट्रपति कार्यालय से प्राप्त पावती (स्वीकृति)

Presidentofindia@rb.nic.in Thu 4 Jun, 15:36 (11 days ago) Add reaction Reply More

Secretariat presidentofindia@nic.in via nic.in

to Govind, me

महोदय/ महोदया

Sir/Madam,

कृपया उपर्युक्त विषय पर भारत के राष्ट्रपति जी को संबोधित स्वतः स्पष्ट याचिका उपयुक्त ध्यानाकर्षण के लिए संलग्न है। याचिका पर की गई कार्रवाई की सूचना सीधे याचिकाकर्ता को दे दी जाये।

Attached please find for appropriate attention an e-mail petition addressed to the President of India which is self explanatory. Action taken on the petition may please be communicated to the petitioner directly.

सादर।

Regards.

(लक्ष्मी महाराबूशनम्)

(Lakshmi Maharabooshanam)

अवर सचिव

Under Secretary

राष्ट्रपति सचिवालय

President's Secretariat

राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली

Rashtrapati Bhavan, New Delhi

नोट 1 : याचिकाकर्ता से अनुरोध है कि मामले में आगे जानकारी के लिए प्रेषिती (जिसे याचिका अग्रेषित की गई हैं) से सीधे संपर्क करें।

Note 1 : Petitioner is requested to liaise with the addressee(to whom the petition has been forwarded) directly for further information in the matter.

नोट 2 : याचिकाकर्ता अपनी याचिका/शिकायत दर्ज करने के लिए पोर्टल https://helpline.rb.nic.in का उपयोग कर सकते हैं।

Note 2 : Petitioner may use portal https://helpline.rb.nic.in for submitting his/her petition/grievance.

5- वैकल्पिक अर्थव्यवस्था ('ऑल्टरनेट इकॉनमी') पुस्तक की प्रस्तावना

प्रस्तावना

आध्यात्मिक हलकों में कहा जाता है कि जैसे ही महाभारत खत्म हुआ, गांडीव (अर्जुन का धनुष-बाण) की शक्ति भी खत्म हो गई; और जैसे ही भगवान कृष्ण गए, अंधेरा छाने लगा और 'डार्क-एज' (अंधकार का युग), 'काला युग', 'मशीन-एज' (कल-पुर्जों का युग) या 'कलियुग' (कल-कलि का युग) की शुरुआत हुई। कलियुग के आते ही सभी ऋषियों ने दुनिया से किनारा कर लिया और एकांतवास व प्रार्थना में लीन हो गए।

कहा जाता है कि 'डार्क एज' (अंधेरे के युग) की शुरुआत के साथ ही बैटमैन, स्पाइडरमैन, शिकारी, लुटेरे, चोर, मोहक स्त्रियाँ, जादूगर, डार्क वेब चलाने वाले, चालाकी भरी कलाओं, काले जादू और छद्म-विज्ञान के माहिर, और अंधेरे में काम करने वाले अन्य जीव और उपदेशक सक्रिय हो गए और इन्होने अपनी गतिविधियाँ शुरू कर दीं।

अज्ञान के अंधेरे में डूबे और संतों-ऋषियों की उचित सुरक्षा व मार्गदर्शन से वंचित आम लोग, चालाकी और काले जादू में माहिर लोगों की ओर आसानी से आकर्षित होते गये।

अंधकार युग का पहला असर तब दिखा जब लोग रोज़मर्रा की खुशियों से दूर हो गए, अंधकार युग की वजह से अंधे हो गए और सड़े-गले फलों और अनाजों से बनी शराब के नशे में चूर होकर बेपरवाह और बदतमीज़ हो गए। वे इतने कमज़ोर हो गए कि बुज़ुर्गों, पक्षियों, जानवरों, पेड़-पौधों और जलीय जीवों के प्रति सम्मान और कर्तव्य निभाने में असमर्थ हो गए; नतीजतन, उन्हें इन सबसे आपसी सहयोग मिलना बंद हो गया जिससे यह निराश से भर गए।

निराशाजनक बात यह है कि लोगों ने खुद को सुधारने या सही बात को अपनाकर गलतियों को छोड़ने के बजाय, अपने रोज़मर्रा के कामों–खासकर खेती-बाड़ी–में असहयोग की इस घटना को अपनी तथाकथित श्रेष्ठता पर हमले के तौर पर लिया।

फिर साधु के भेष में शैतान आता है जो लोगों को सलाह देता है कि वे पालतू जानवरों को काबू में करें–चाहे इसके लिए बछड़े को मारना पड़े या बैल को बधिया करना पड़े, उनकी नाक में छेद करके रस्सी डालनी पड़े, या बागी जानवरों पर हमेशा के लिए बोझ डालकर उन्हें कैद में रखना पड़े। दोस्त के भेष में छिपे ये दुश्मन लोगों को यह भी सलाह देते हैं कि वे इन जानवरों का पूरी तरह से इस्तेमाल करें और उन्हें एक उपयोगी चीज़ की तरह बरतें। साधु के भेष में छिपे इन शैतानों और दोस्त के भेष में छिपे दुश्मनों ने लोगों को यह भी सिखाया कि जानवरों और सोने पर कब्ज़ा करना और पर्यावरण का अपने फ़ायदे के लिए इस्तेमाल करना ताकत की निशानी है, और जिसके पास ये चीज़ें जितनी ज़्यादा होंगी, वही सबसे ताकतवर होगा। इन सब बातों ने लोगों की सोच और उसके नतीजतन उनके व्यवहार और कामों में एक बहुत बड़ा बदलाव ला दिया है।

अपने निजी फ़ायदे के लिए पर्यावरण का इस्तेमाल करने की इस सोच ने जानवरों, और ख़ासकर गाय-बैल की प्रजाति पर बहुत ज़ुल्म किए हैं। सांडों को बधिया करके बैल बनाना और खेती-बाड़ी में उनसे गुलामों की तरह काम लेना–इस वजह से हमारे खाने-पीने की चीज़ों, जैसे दूध और अनाज में बैल और गाय का अभिशाप आ गया है।

यह सबसे बड़ा आश्चर्य है कि कैसे पूरे समुदाय इस बुनियादी बात को भूल गए हैं कि "अन्न /खाना/दूध ही मन को संचालित तय(जैसा अन्न वैसा मन) करता है और पानी आवाज़ तय करता है (जैसा पानी वैसी वाणी)" और वे सबसे निचले स्तर पर गिर गए हैं; और यह सब भारत जैसे देशों में हुआ है, जो दावा करते हैं कि उनके पास सबसे बड़ी और महान समझ है। और भी हैरानी की बात यह है कि पिछले तीन हज़ार सालों में सामने आए ज़्यादातर नए धर्म, जो इंसानी चेतना को ऊपर उठाने की बात करते हैं, खान-पान के इस बुनियादी मुद्दे पर चुप रहे–जबकि खान-पान ही इंसान की पूरी सोच और उसके व्यवहार को बदल देता है। अफ़सोस!

भारत के लिए गायों के प्रति यह फ़ायदे-नुकसान वाला रवैया और भी हैरानी की बात है, क्योंकि यहाँ के ज़्यादातर लोग शिव मंदिरों में नंदी (सांड) और गाय को 'माता' मानकर उनकी पूजा करते हैं। साथ ही, यह बात बहुत अजीब लगती है कि नंदी -नंदिनी (सांडों - गायों) के साथ होने वाली असल ज़्यादतियों और क्रूरता को वे ढेरों पंडित, संत और साधु नज़रअंदाज़ कर देते हैं, जो हमेशा 'गौ माता', भगवान शिव और उनके गणों का गुणगान करते रहते हैं। गायों के साथ बुरा बर्ताव करने का नतीजा यह होता है कि ऐसे उपदेशकों का अनादर होता है, ऐसे समुदायों को गरीबी झेलनी पड़ती है और ऐसे देशों को गुलामी का सामना करना पड़ता है।

जो लोग गाय का दूध पीते हैं और फिर गोमांस खाते हैं, उनके बारे में कहा जा सकता है कि वे मशीनों की तरह असंवेदनशील हो गए हैं और कहीं न कहीं उन्होंने खुद को मशीनों की तरह इस्तेमाल होने के लिए सौंप दिया है; इसलिए अगर वे भाई-हत्या और नरसंहार की ओर मुड़ जाएं, तो इसमें कोई हैरानी की बात नहीं होगी।

गर्म रेगिस्तान या बर्फीले ठंडे मौसम वाले देशों में बीफ़ की बढ़ती खपत ने उन्हें भारत जैसे देशों में दुग्ध (डेयरी) कारोबार बढ़ाने के लिए प्रेरित किया है। इसके लिए वे आसान ऋण (लोन) और डेयरी उत्पादों के ज़्यादा इस्तेमाल के लिए दूसरी प्रोत्साहन योजनाएँ देते हैं, ताकि गोमांस (बीफ़) की लगातार माँग को पूरा किया जा सके। इसका नतीजा दूध और चीनी वाली चाय और कॉफ़ी की बढ़ती खपत में देखा जा सकता है। इसने समस्या को और बढ़ा दिया है और गायों के प्रति अपराधों में भी बढ़ोतरी की है। साथ ही, सबसे उपजाऊ ज़मीन का 25 से 30 प्रतिशत हिस्सा घास, गन्ना, चाय और कॉफ़ी की खेती में इस्तेमाल होने लगा है, जिसे वनों की कटाई और उसके कारण होने वाले जलवायु परिवर्तन और चारों ओर फैली बदहाली का एक बड़ा कारण माना जा सकता है।

ऊपर दी गई बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि जो गिरावट कभी न खत्म होने वाली लग रही है, उससे वापसी संभव है। इसकी शुरुआत हमारे खान-पान में मामूली बदलाव से हो सकती है। आध्यात्मिक दायरे में इसे मृगतृष्णा (भ्रम), अनेक रूप या 'माया' का असर कहा जाता है; वरना इतना छोटा और आसान काम इतने लंबे समय तक सफल नहीं हो पाता। आध्यात्मिक लोग कहते हैं कि नई सुबह होने वाली है और यह समय प्रार्थना करने, खुद को सुधारने, खान-पान ठीक करने और प्रकृति के प्रति अपना व्यवहार बेहतर बनाने का है। साथ ही, हमें मंथन के लिए तैयार रहना चाहिए ताकि हम अपनी सामूहिक भलाई के लिए बेकार की चीज़ों को छोड़ सकें और कीमती चीज़ों को अपना सकें। वैकल्पिक अर्थव्यवस्था की यह किताब इस दिशा में काफी जानकारी देती है।

कौस्तुभ अग्रवाल
स्टैंडअप कॉमेडियन

6-पवित्र गाय - मीता-जीवन शैली प्रारूप पुस्तक का एक विषय

पवित्र गाय (मीता-जीवन शैली प्रारुप):-

महर्षि दुर्वाशा ने गाय को माँ का दर्जा दिया था, एवं नंदी, शिव एवं शक्ति की पूजा में मुख्य अग्रणी है और इसीलिए नंदी (सांड) को शिव लिंग के साथ ही पूजा करने का हर मंदिर में स्थान/दर्जा दिया गया है।

जहाँ तक पवित्र गाय का सवाल है दो विचित्र चीजें दिखाई दी हैं।

1. गाय को माता की तरह सम्मान किया जाता है लेकिन उसके बछड़े को खेतों में जोतने के लिए बधिया बना दिया जाता है। गाय के बछड़ों में से बहुत कम ही स्वाभाविक रूप से, बिना बधिया किए हुए, सांडों की तरह जीते हैं, ताकि वंश चल सके। बहुत बार जब गाय दूध देना बंद कर देती है, तो यही गाय अब लोगों के लिए अनुपयोगी हो जाती है वे इसे छोड़ आते हैं या कसाइयों के हाथों बेच देते हैं, एशिया के अधिकांश भागों में ऐसा ही है, अगर पूरी दुनिया में नहीं तो।

2. बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए गाय पवित्र नहीं, वे भी गाय की दूध देने तक सेवा करते हैं, और जब गाय दूध देना बंद कर देती है, वे गाय को ही खा जाते हैं। भारत में कुछ ऐसी प्रजातियों है जो बकरी का दूध न दुहते हैं न पीते हैं, सिर्फ इसलिए कि वह बकरे का माँस खाते हैं. उनका कहता है अगर वह बकरी का दूध पियेंगे तो बकरी मों के समकक्ष हो जायेगी और फिर बकरी का मॉस खाना माँ का मॉस खाना जैसा होगा।

पहला किस्सा तो पाखंडियों का है, और दूसरा उन लोगों जिन्हें मतलब के अलावा कुछ समझ में नहीं आता।

1.1 अगर कोई इस विषय में गहरे जाने का खतरा उठाए, तो उसे यह निष्कर्ष निकालने का डर निश्चित ही सताएगा कि पहले प्रकरण में पूरा समाज पाखंडियों और सम्मोहित लोगों का समाज है, जो आत्मसम्मोहन की नींद में चलते चले जाते हैं, इसके पुरुष फिर स्वयं ही जुते हुए बैलों की तरह होंगे, और इस समाज के शीर्षस्थ लोगों का आम लोगों के ऊपर कोई वास्तविक नैतिक प्रभाव न होगा, और इसके बुजुर्गों और महिलाओं का सम्मान तो होगा, लेकिन यह सम्मान उन्होंने लगातार भय में रहकर ही प्राप्त किया होगा। ऐसे समाज के बच्चों का लालन-पालन अप्राकृतिक और कृतिसता से भरा होगा।

पवित्र गाय-जिसे हम माता कहते हैं, उसका श्राप आखिरकार किसी न किसी रूप में तो ऐसे समाज का पीछा तो करेगा ही वह चाहे हिन्दू हो जैन, बौद्ध या सिख या देश का मुश्लिम एवं ईसाई समाज हो हो या और कोई भी ।

2.1. और एक ऐसा समाज जो दूसरे प्रकरण की तरह व्यवहार कर रहा है, उसमें बुजुर्ग पीढ़ी के लिए कोई ज्यादा सम्मान न होगा और नई पीढ़ी के प्रति और भी कम। इसमें तो केवल उस आदमी का सम्मान होगा जो कि पैसा कमाकर लाता है. और यह सम्मान ही उसकी कमाई के हिसाब से घटता बढ़ता रहेगा। यहां अगर हम ध्यान से देखें तो कुछ निराशा, असहायता और थोड़ी बहुत अंधी हिंसक प्रवृत्ति है। इस समाज में निराश बुजुर्ग, किंकर्तव्यविमूढ युवक होंगे, पूरा समाज युवकों पर केंद्रित रहेगा, और महिलाएं उपयोग की वस्तु, एक ऐसा समाज जहां महिलाओं को केवल उनके आकर्षक रहने तक ध्यान रखा जाएगा, और महिलाएं भी केवल अपने आकर्षण को बनाए रखने के लिए अपने शरीरों, खाने और कपड़ों का ध्यान रखेगी।

<u>निश्चित ही सारी दुनिया से यही निवेदन किया जा सकता है, कि हम देखें, कि हम वास्तव में करना क्या चाहते हैं, इससे पहले कि सिर्फ आरोप गढ़ते घूमें।</u>

अ) जो गाय को अपनी मां कहते हैं उन्हें बिल्कुल साफ कर देना चाहिए, कि वे अपनी गाय माता की मृत्यु के बाद क्या करेंगे, क्या वे उसके लिए अंतिम संस्कार करने वाले हैं. क्या वे यह सुनिश्चित करने के लिए तैयार है कि गाय के चमड़े का प्रयोग न किया जाएगा, और कि उसका दूध केवल तभी प्रयोग में लाया जाएगा, जबकि बछडे का पेट भर गया हो।

आ). गाय के पवित्र होने के सवाल को केवल भावुकता बनाना कोई अच्छी बात नहीं, यह विषय ज्यादा व्यवहारिक होना चाहिए, आखिर हम भी तो हर जगह अपने समाज में व्यवहारिकता की आशा करते हैं। और हम भी तो यह कहते नहीं थकते कि हमारे समाज, राज्य और राष्ट्र को व्यवहारिक काम की जरूरत है, सिर्फ भावनाओं की या नारों की नहीं।

इ) बछड़ों को बधिया बनाना बिल्कुल जरूरी नहीं, देश के ही कई भागों में सांड भी खेती के काम में सहयोग देते हैं। इसी तरह के दूसरे जानवरो घोडों, भैसों और गधों को तो कोई काम लेने के लिए बधिया बनाना जरूरी नहीं मानता।

ई) गोमांस खाने वाले समाजों के नेताओं को यह तय करना चाहिए कि क्या वे परस्पर आपसी समझदारी से चलने वाला समाज चाहते हैं, या फिर एक हमें विषयों मतलबी समाज, और वे ही इसका निर्णय करें। पूरे भारत के लिए को उनके सारे पक्षों में विचार विमर्श के लिए धार्मिक नेताओं और बुद्धि जीवियों के सामने रखना चाहिए, ताकि अमल के लिए कुछ तो निर्णय लिए जा सकें। यहां दो चीजों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(i). जीव, जीवों को भोजन है।

(ii). भारत की कुछ प्रणालियों में गाय की वसा और यहां तक की मानव खोपडी का भी चिकित्सा के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

(iii). जब हम गाय का ध्यान रखने का प्रचार-प्रसार करें तो यह संदेश निश्चित **ही जाना चाहिए, कि गाय या गाय से जुड़ी हुई चीजों की उपस्थिति मात्र हमें स्वास्थ्य और समृद्धि प्रदान करती है। जहां तक गोवंश की उपयोगिता का सवाल है यह तो आसानी से देखा जा सकता है कि अगर एक किसान के पास दो गायें और उनकी संतानें हैं तो उसके स्वयं के परिवार के लिए पर्याप्त मात्रा में दूध, गोबर (कंडे और गैस), खाद, गांव के भीतर यातायात की व्यवस्था और चिकित्सा के लिए दवाइयां, सभी कुछ मौजूद है।**

ऊ) रासायनिक खादों, दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिए इंजेक्शनों को अनावश्यक प्रोत्साहन देना ठीक नहीं, इनसे फसलों, दूध और दूध के उत्पादों की गुणवत्ता गिरती है। है। गायों को सम्मान देने के साथ हमें दूध देने वाले अन्य जानवरों जैसे भैंस, बकरी, और यॉक के बारे में एवं उनके पुरूषत्व लिए हुए बच्चों के साथ क्या व्यवहार रखना है इस पर भी चर्चा करनी होगी।

ए). डेनमार्क में अभी हाल में किए गए प्रयोग, जिनमें स्त्रियों के दूध में मौजूद डी.एन.ए. के इंजेक्शन गायों को इस आशा में दिये गए कि, गायों का दूध मनुष्य स्त्रियों के दुध के समान होगा, स्वागत योग्य हैं। इससे गायों के दूध का सम्मान बढ़ेगा।

ऐ). स्त्रियों, बकरियों, भैंसों जैसा दूध देने के लिए क्लोनिंग या गायों को दिए जाने वाले डी.एन.ए. इजेक्शन जैसी प्रक्रियाओं से ज्यादा बेहतर दूध देने वाली नई नस्लें पैदा हो सकती हैं। अगर हम विकास के पिछले चार-पांच हजार सालों का क्रम देखें तो हम यह पाएंगें कि इस तरह की नई नस्लें केवल एक जीवनकाल तक ही बचती हैं और उनके संतति दर संतति आगे चलते चले जाने की संभावना कम ही होती है। इस तरह के संकर चाहे वे खच्चर हों, बिना बीज के पपीते या कुछ और, अभी तक तो किसी नई नस्ल को उसकी प्रजनन क्षमताओं सहित जन्म देने में सक्षम नहीं हुए। इनको बड़े स्तर पर प्रोत्साहित करने की जरूरत नहीं।

ओ). गायों और जानवरों को स्वतंत्रता प्रदान करना, स्वस्थ आनंदमय और पवित्र वातावरण के लिए, तात्कालिक जरूरत है, धरती मनुष्यों की जायदाद नहीं है।

गाय को सम्मान देने से यह भी पता पड़ता है कि आखिर शासन है किस तरह का। जहाँ साड़ो को पैदा किया जाता है वहाँ गायें सुरक्षित रहती है, जहाँ बछड़ो को बधिया बनाया जायेगा वहाँ गायें असम्मानित एवं मारी जायेंगी।

जो राष्ट्र कमजोरों की रक्षा और बुद्धिमानों का सम्मान करता है, केवल ऐसे शासन ही वास्तव में लचीले और कल्याणकारी और शक्तिशाली होते है और अपनी सीमाओं की सुरक्षा कर पाते हैं।

***

7- "डिविनक्रेसी (डिवाइन डेमोक्रेसी)" किताब के अध्याय: भारत की स्थिति: धार्मिक व्यवस्था", से कुछ अंश,

पाठक: अब मैं गौ-रक्षा के बारे में आपके विचार जानना चाहूँगा।

संपादक: (1) मनुष्य अपनी माँ का दूध पीकर और पूरक के तौर पर गाय, भैंस, बकरी, ऊँट आदि का दूध पीकर बड़ा होता है। दूध देने वाले जानवर को लात मारना या छोड़ देना उपयोगितावाद को दर्शाता है, और जिसका दूध पिया है उसे मार कर खा जाना नरभक्षण जैसा है। अगर आप दूध देने वाली गाय को इसलिए छोड़ देते हैं क्योंकि उसने दूध देना बंद कर दिया है, या आप बड़े हो गए हैं और आपको दूध की ज़रूरत नहीं है, तो यह उपयोगितावाद की चरम सीमा है; यह किसी भी अन्य काम से बड़ा अपराध है–उन लोगों के अपराध से भी बड़ा जो गाय (आपकी माँ) को ले जाते या खरीदते हैं, उसे मारते हैं और उसका मांस खाते हैं।

(2). हिमालयी क्षेत्र में मांस खाने वाले कुछ समुदाय न तो बकरी और भेड़ का दूध पीते हैं और न ही बेचते हैं। उनका कहना है कि अगर वे बकरी और भेड़ का दूध पिएंगे या बेचेंगे, तो ये जानवर उनकी 'माँ' जैसे हो जाएँगे, और फिर उनका मांस खाने के बारे में सोचना भी नामुमकिन होगा।

(3). खेती में मशीनीकरण के आने से पहले, भारतीय उपमहाद्वीप के किसान और उनके परिवार (हिंदू और मुसलमान) गायों का सम्मान करते थे, इसलिए यह कहना बेबुनियाद है कि मुसलमान गायों का सम्मान नहीं करते।

(4). जब आप नंदी को बधिया करके उसे 'बैल' (कामकाजी पशु) बनाते हैं, तो आप गाय-वंश का श्राप मोल लेते हैं; और इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि पूरा समुदाय ही पौरुषहीन हो जाता है और उनमें आपस में ही यौन-संबंध (incest) बनाने की प्रवृत्ति पनप सकती है। समस्या सिर्फ़ गाय की सुरक्षा की नहीं है, हालांकि यह बुनियादी बात है; लेकिन अगर लोग और सरकार 'माँ' (दूध देने वाली) का सम्मान करने में नाकाम रहते हैं–जिसे कमज़ोर समझा जाता है–तो देर-सवेर वह गुलाम हो ही जायेंगे, चाहे वे हिंदू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों या कोई और।

पाठक: आपने गायों की सुरक्षा के बारे में बात की है; हमने हाथियों के साथ भी क्रूरता देखी है, तो आप हाथियों की सुरक्षा के बारे में क्या कहेंगे?

संपादक: सबसे पहली बात तो यह है कि जंगल खत्म हो रहे हैं। छोटे-मोटे फ़ायदों के लिए बेतहाशा वन्यजीवों को मारा जाता है। कई अमीर लोग हाथी के दाँतों से अपने ड्राइंग रूम को सजाना चाहते हैं और कई लोग दवा में इनका इस्तेमाल करना चाहते हैं। इसी तरह, शेर के दाँतों का इस्तेमाल भी सजावटी चीज़ों के तौर पर किया जा रहा है। क्रूरता के संभव होने का मुख्य

कारण जंगलों का कम होना, इंसानी आबादी का बढ़ना और जंगलों का केंद्रीकरण है, जिसकी वजह से स्थानीय लोग वहाँ के पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं से बेपरवाह और कटे-कटे से हो गए हैं। अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है; सिर्फ़ हाथियों या शेरों को बचाने और उनकी सुरक्षा के लिए नारे लगाने से काम नहीं चलेगा। अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है; सिर्फ़ हाथियों या शेरों को बचाने और उनकी सुरक्षा के लिए नारे लगाने से काम नहीं चलेगा।

पाठक: आपने वन्यजीवों के बारे में अच्छी बात कही है, क्या आपको समुद्री जीवों की सुरक्षा की भी कोई चिंता है?

संपादक: पहले व्हेल का शिकार किया जाता था, लेकिन अब एक वैश्विक समझौते के तहत वैज्ञानिक शोध के मकसद को छोड़कर व्हेल के शिकार पर रोक लगा दी गई है। ऐसा क्यों? हमें उसे भी रोकना होगा। चाहे वजह या वैज्ञानिक शोध कुछ भी हो, हमें किसी भी तरह की हत्या के लिए 'ब्लैंक चेक' (बिना शर्त मंज़ूरी) देना बंद करना होगा। सभी वैज्ञानिक शोधों को समझदारी की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए और व्हेल या गिनी-पिग को मारने का काम बंद किया जाना चाहिए।

पाठक: सुअर की सुरक्षा के बारे में क्या?

संपादक: पहले गाय या सूअर के मारने-काटने से कई झगड़े कराये गए। गाय स्वच्छता का प्रतीक है और सुअर मैला-कुचैला खाने वाले जीव का प्रतीक है।

सुअर से नफ़रत मत करो; गंदगी/प्रदूषण से नफ़रत करो, उस व्यक्ति से नफ़रत करें जो बेवजह गंदगी या प्रदूषण फैलाता है। विडंबना यह है कि लोग मक्खियों, मच्छरों या सूअरों को पसंद नहीं करते, लेकिन साफ़-सफ़ाई नहीं रखते; जबकि साफ़-सफ़ाई रखने से ये मक्खियाँ, मच्छर और सूअर अपने-आप कम हो जाएँगे।

***

8- "गाय और नंदी (बैल) की स्थिति हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करती है "'भारत की नज़र में वैश्विक व्यवस्था' पुस्तक का परिशिष्ट,

गाय एवं नंदी की दशा हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करती है

प्रश्न: गाय एवं नंदी की वर्तमान दयनीय दशा देखकर हमें इस वात पर बहुत आश्चर्य होता है की गाय-नंदी लोगों के लिए पूज्यनीय भी कही जाती है, इस बाबत आपका क्या कहना है?

उत्तर:- उपरोक्त प्रश्न के सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रस्तुत है:

1. विश्व में काफी लोग शिव मंदिर में नंदी की पूजा करते हैं।नंदी को शिव की सवारी कहते हैं।सर्वप्रथम दुर्वासा ऋषि ने नंदी की सहचरी गाय को माँ कहा और तब से आज तक भारत एवं विश्व में परंपरागत रूप से गाय को माँ ही समझते हैं मानते हैं, जानते हैं।

नंदी-सांड की ताकत आज भी स्पेन में, कुछ जगह तमिलनाडु में जहां सांडो की लड़ाई होती है, से अंदाजा लगाया जा सकता है, कहते हैं यह शेर से भी लड़ने में कतराते नहीं है। आज ना शेर बचे हैं, ना ही नंदी और ना ही जंगल, अत: इसका आकलन करना मुश्किल है। कहते हैं पहले नंदी ही खेती में सहयोग देते थे, गाय का दूध जैसे सारे प्राणी जगत में उसके बच्चे ही पीते हैं वैसे ही गाय का दूध गाय के बछड़े पिया करते थे।

कभी-कभार कोई माँ अपने अतिरिक्त दूसरे किसी और के बच्चे को पाल लेती है, ऐसे ही गाय के दूध से इंसान के बच्चे पल जाया करते थे और इंसान के बच्चे जिसकी माँ या माँ का दूध असमय खत्म हो जाता था, के जीवन की बढ़ोतरी में कोई अंतर नहीं आता था इसलिए ऐसे बच्चों के लिए वह गाय माँ ही होती थी या है और होगी एवं परिवार के अन्य सदस्यों के लिए इस बच्चे की माँ की तरह, आदरणीय रहती थी, पूजनीय रहती थी।

देश एवं दुनिया के उन इलाकों में जहां रेगिस्तान है, जहां बर्फ और जहां पहाड़ी है वहां गाए एवं नंदी के रहने लायक जलवायु वातावरण ही नहीं है, ऐसे स्थान पर जहाँ गाय एवं नंदी नहीं रह सकते हैं वहाँ उनकी मनुष्य के जीवन में सहभागिता का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे गाय का वैसे ऊंट का, शेर का सभी के लिए रहने के स्थान है और वहीं उनका सम्मान है, दूसरे स्थान पर वह एक कौतूहल का विषय हो सकते हैं, या चिड़िया घर में रखने की वस्तु।

पिछले बीस वर्षों के अपने भ्रमण में देश में एक ही जगह छोटा-नागपुर के मध्य आदिवासियों के बीच ऐसी मिली जहां गाय का सम्मान इसलिए होता है कि उसका बछड़ा खेती करता है, वहां गाय का दूध बछड़े को ज्यादा पीने देते हैं। वह कहते हैं की यदि बछड़ा मां (गाय) का दूध नहीं पीयेगा तब उसमें ताकत कैसे आएगी और फिर वह बड़े होकर खेत में अन्य जानवर से अपनी सुरक्षा कैसे करेगा एवं खेती में सहयोग कैसे देगा।

इस इलाके में कुछ ऐसी भी जगह है, जहां के आदिवासी नंदी को नंदी ही रहने देते हैं उन्हें बधिया कर बैल नहीं बनाते वह कहते हैं यह परिवार का हिस्सा है इससे हमें डर नहीं है बल्कि वक्त आने पर छोटे-मोटे जंगली जानवर से हमारी सुरक्षा भी करता है, वह यह भी कहते हैं कि इसे अगर बधिया कर बैल बना देंगे तब यह काम तो कर लेगा लेकिन अपनी एवं हमारी सुरक्षा नहीं कर पायेगा। नंदी को बधिया करने के बाद, बैल बना नंदी एवं बाकी गाय बछड़े उदास रहते हैं, पूरे घर एवं कुनबे का माहौल कुछ अजीब सा रहता है। उन इलाकों में जहां नंदी को बधिया बना देते हैं वहां एक अजीब सा विकर्षण रहता है, क्रोध एवं असहायता का गुस्सा होता है। पता नहीं लोग इतने क्रूर कैसे हो जाते हैं ऐसे लोगों को प्रकृति का बहुत श्राप तो लगेगा ही।

इस सम्बन्ध में अन्य बातें निम्न है:

i. लोग जब कमजोर हो जाते हैं तब उन्हें नंदी से डर लगने लगता है, जब वह पलायन वादी हो जाते हैं और छद्म शांति की बात कहने लगते हैं और शांति का पाठ लोगों को पढ़ाना शुरू करते हैं। इसका परिणाम यह होता है की ऐसे पलायनवादी व्यक्ति दूसरों को शारीरिक एवं गुलाम बनाने की प्रक्रिया में अग्रसर होने लगते है, क्योंकि जब कोई भी शारीरिक रूप से बधिया एवं मानसिक रूप से गुलाम हो जायेगा तब उसे कहीं भी हांका जा सकता है, उससे कोई भी काम लिया जा सकता है । मानसिक गुलामी एक नपुंसकता की तरह होती है जो वास्तव में तो गुलामी नहीं लगती लेकिन शारीरिक गुलामी से ज्यादा खतरनाक होती है, तुम मेरी मानो, मेरे जैसे हो जाओ, तुम शांति की बात करो, दुनिया में शांति रहे, शेर भी शांत रहे, नंदी भी शांत रहे, यह बहुत लुभावना लगता है, लेकिन इसने ही दुनिया को बर्बाद किया है,तुम बौद्ध हो जाओ, मुसलमान हो जाओ, तुम ईसाई हो जाओ, तुम हिन्दू हो जाओ, यह सब क्या है?

यह चलन जब से शुरू हुआ लगभग पच्चीस सौ वर्ष पहले तभी से नंदी को बधिया किया जाना, स्त्रियों को पुरुषों से अलग करना, स्त्रियों की तुलना गाए से की जाती थी और पुरुषकी तुलना पहले जो नंदी से होती थी वह बैल से होने लगी। गाय वंश के प्रजनन के लिएकुछ नंदी रखे गए और बाकी सब को बैल बना दिया गया। इस तरह समाज में कुछ पुरुषों को सैनिक,योद्धा बने रहने दिया, बाकियो को शांति का पाठ पढ़ा कर मानसिक गुलाम बनाकर ठीक उसी तरह इस्तेमाल किया जाने लगा जैसेबैलों को, समाज में, व्यभिचार, नपुंसकता, कदाचार, अनाचार एवं भ्रष्टाचार इसका स्वाभाविक परिणाम है।

भारत में सबसे पहले मानसिक गुलाम बनाकर धर्म का प्रचार किया गया जिसे राज्यों का आश्रय भी मिला,बाद में यह बलपूर्वक हुआ, शारीरिक गुलाम बनाकर मानसिंक गुलाम बनाया गया एवं धर्म का (उपयोग वाद का) प्रचार प्रसार किया गया।

ii. जब से चाय-कॉफी में दूध मिलाने का चलन चला है तब से गायों की संख्या में बढ़ोतरी और नंदी की संख्या में, बैलों की संख्या में कमी आयी है। और जब से चाय-कॉफी के साथ ट्रैक्टर का भी चलन बड़ा है तब से बछड़े को जन्म के कुछ दिन बाद ही जब गाय संभल जाती है तब भूख से ही मार दिया जाता है।

गायों में कृत्रिम गर्भाधान, दूध निकालने के इंजेक्शन एवं मशीनों के प्रयोग से गाय के लिए खूब सारी घास को पैदा करने के लिए रासायनिक खाद व कीटनाशकों के प्रयोग से जहां एक और दूध में कीटनाशक एवं बाद में दूध को फटने से बचाने के लिए कास्टिक सोडा को मिलाने के कारण कैंसर एवं दूसरी बीमारियों की शिकायतें बढ़ी है, वहीं इन रासायनिक एवं इंजेक्शन के कारण गायं जहरीली होनी लगी, जिससे गाय के मरने के बाद इन्हे गिद्ध द्वारा खाये जाने से गिद्ध की पूरी प्रजाति ही लगभग लुप्तप्राय हो गई।

सामान्य स्थिति में एक सामान्य गाय-अपने जीवन में चार बार प्रजनन करती है, और एक प्रजनन से दूसरे प्रजनन के मध्य उतना अंतर होता है जितने समय वह दूध देती है-जो करीब तीन से पाँच वर्ष का होता है, लेकिन आज दूध की आवश्यकता बढ़ने से प्रजनन का अंतर कृत्रिम गर्भ द्वारा एक से दो वर्ष कर दिया गया है-जिससे गाय जल्दी-जल्दी प्रजनन करती है जिस कारण वह जल्दी बूढ़ी हो जाती है, और सडको पर खुली छोड दी जाती है। जिसे कोई मुफ्त में या सस्ते दामों में खरीदकर गाय के ऑटोमेटिक प्लांट में कटने के लिए भेज देता है।

मशीन से दूध निकालने में कई बार दूध के साथ (यदि दूध कम हुआ तो खून भी निकल आता है-ऐसे में गाय और उसका दूध पीने वाला दोनों का बीमार होना स्वाभाविक है, मेड काऊ (Mad cow direase) गायों के पागलपन की बीमारी इसी वजह से फैली थी।

iii. गाय के संबंध में भारतीय सुप्रीम कोर्ट का दो हजार पाँच का निर्णय एवं आदेश देखने योग्य है, जो गाय प्रेमियों एवं कसाइयों के मध्य चले उन्नीस सौ अठान्वे के एक प्रकरण में दिया गया। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को व्यक्तियों ने, समाजो ने एवं सरकार ने कितनी इज्जत दी यह तो पंद्रह वर्षों मे आंकड़ों से परिलक्षित हो जाता है, लेकिन यह निर्णय उन लोगों के लिए जरूरी है, जो आज भी इस प्रकरण में धर्म को लायेंगे, विदेशी मुद्रा, उपयोगवाद के लाली पॉप की चर्चा करेंगे। और गाय को उपयोगी बतायेंगे।

iv. पिछले एक सौ पचास वर्षों में गाय के मांस का सेवन बड़ा है इसका विदेशी व्यापार बड़ा है। पिछले सत्तर वर्षों में सरकार कोई भी आई हो हर वर्ष गाय के मांस का निर्यात बढ़ा है। साधु संत एवं धार्मिक संगठन सिर्फ बात करना बंद करें और इस बात पर ध्यान दें कि जितनी गायें दिखायी देती है-उतने सांड़ दिखायी नहीं देते, तो वह कहाँ जाते हैं? कत्ल खाने में गाय पहुंचती कैसे हैं कोई कत्लखाना गाय पालता तो नहीं, तब जाहिर है लोग गायों को बूढी होने पर छोड़ देते होंगे और कत्ल खाने के व्यापारी इन्हें हांक कर ले जाते होंगे और बेचते होंगे।

v. चाय कॉफी के सेवन के कारण चीनी, चाय पत्ती, कॉफी, दूध के लिए गाय और गाय के लिए चारें के कारण जंगल कटे हैं, मौसम बिगड़ा है, बाढ़, सूखा, पहाड़ खिसकना बे-मौसम की बारिश जैसे अभिशाप बड़े हैं। गाय एवं गोवंश पर अत्याचार सारी सीमाओं को लांघ गए हैं और इस पाप में लगभग पूरी मानव जाति शामिल है और भारत की भूमि विशेष रूपसे भागीदार है और अपराधी है।

vi. भविष्य पर एक नजर डालते हैं तो आज इंसानों में कृत्रिम गर्भाधान शुरू हो गया है जेनेटिक्स एवं क्लोनिंग द्वारा सब्जियों फलों का आकार बड़ा ही दिया गया है, ऐसे में अगर कल के दिन इंसानों में अगर आज के इंसानों से दोगुने आकार के इंसान हो जायें तब वह कहेंगे कि इतने सारे पुरुषों की क्या आवश्यकता है, कुछ पुरुष ही काफी है प्रजनन के लिए, और कृत्रिम गर्भाधान से हो ही जाएगा और इसके अलावा भविष्य में इस क्षेत्र में कुछ और भी हरकत हो सकता है ऐसे में पूरे वैज्ञानिक विकास पर कृत्रिम गर्भाधान पर दूध के उपयोग पर संवाद जरूरी है, हमारे लिए नहीं तो आने वाली संतानों के सुखद भविष्य के लिए।

vii. भारत में कहते है १८५७ की क्रांति के पीछे मंशा कुछ भी रही हो लेकिन कहा जाता है कि हिन्दू सैनिकों के बीच यह बात फैलाई गयी, एवं मुस्लिमो के बीच यह कि कारतूसों में गाय-तथा सुअर की चर्बी /खाल होती है। गाय की चर्बी की जिस बात को लेकर एक क्रांति हो सकती है-सभी को आश्चर्य नहीं होता है कि आज वह गाय के मांस का दुनिया में सबसे बड़ा उत्पादक/निर्यातक है। कहते है-१८९४ में दयानंद सरस्वती के नेतृत्व में गो हत्या को लेकर हिन्दु मुस्लिम एक थे, उसके बाद अंग्रेजो ने यह सुनिश्चित करवाया कि यह तो मुस्लिम कसाई ही हो-और यह प्रचारित करवाया कि यह तो मुस्लिम है जो गाय को काट रहे है, और हिन्दु मुस्लिम में विरोध बढाया-और गो माँस का व्यापार बढ़वाया।

1. हमारे सामूहिक विचार विमर्श एवं परिस्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में निम्न प्रेषित है:

i. दूध की चाय कॉफी का चलन सामाजिक राष्ट्रीय कार्यालय एवं स्थानों पर बंद हो। समाज में दूध के चाय काफी का प्रचार बंद हो, काली चाय /कॉफी, नींबू वाली चाय चल सकती है, इस पर संवाद ही नहीं सहयोगात्मक कार्य भी हमारे वर्तमान एवं भविष्य के लिए अनिवार्य होगा, कहते हैं जैसा अन्न वैसा मन अतः हमें अपना अन्य शुद्ध रखना होगा तभी हमारा मन ठीक रहेगा।

ii. बैल बनाने की प्रक्रिया बंद हो। कृत्रिम गर्भाधान बंद हो। जो गाय पालने की इच्छा रखते हो वह नंदी भी पाले। गो-पालन व्यवसाय के रूप में बंद हो, ना ही इसके लिए लोन ना ही कोई सहायता राशि।

iii. पंचगव्य : एक समुदाय कहता है-गाय के पंचगव्य से (गोबर, गोमूत्र, दूध, दही एवं घी)-बहुत उपयोगी है-इसमें बहुत सी चिकित्सीय गुण है। वही दूसरा समुदाय कहता है-अरे गाय के पंचगव्य तो उपयोगी है ही-इसके अतिरिक्त उसके दूसरे पंचगव्य (मांस, खाल, हड्डियां, खुर, सींग) इसमें बहुत जैवकीय गुण है। प्रथम समुदाय गाय को बांध कर जीते जी दुख देता है और दुसरा मारते समय, नंदी को भूख से मारता है। यह समुदाय नंदी की बात नही करता।

iv. एक समुदाय कहता है-गाय को मारना पाप है, जिसको पालते है उसको मारते नहीं (अपने पालन को कौन मारता है) उसका मांस नहीं खाते। दूसरा समुदाय कहता है-हम गाय का मांस खाते है इसलिए हम गाय पालते नही। तीसरा समुदाय कहता है-हम ना गाय को पालते है ना हम गाय का मांस खाते है हम सिर्फ ऑटोमेटिक प्लांट में गाय को काटते हैं, पैक कराते हैं और बेच देते है। इन तीनो समाजों में कौन ज्यादा पाखंडी है कहना मुश्किल है?

v. नकेल (नाक में रस्सी बांधना) इतनी ताकतवर इतनी छोटी होती कि यदि गाय की जगह इंसान हो तो वह जीते जी मृत्यु की कामना करें। गायों को इन तथाकथित गाय पालने वाले गाय प्रेमियों ने तथाकथित गाय का मांस खाने वालों से ज्यादा दिक्कत दी है।

यदि किसी इंसान (मुझे ही क्यों न) को बांध कर रखे, खाने के लिए मेरी मर्जी का खाना न दे, मेरे परिजनों से मुझे मिलने न दे, बच्चों को बधिया कर दे, तब ऐसे में जो मुझे मारेगा वह मेरी मुक्ति ही करेगा, फिर वह मेरे मरने के बाद मेरा अंतिम संस्कार (गाय का माँ की तरह) करे या मेरा मांस खाये, खाल खींचे, हड्डियों का चूरा बनाये मुझे क्या फर्क पड़ता है।

गाय की हम इज्जत करते है, उसे माँ समझते है तो गाय वंश को इन तथाकथित गाय मांस खाने वाले, काटने वाले शैतानो से ही नहीं इन तथाकथित गाय पालने वाले, गाय प्रेमियों से भी मुक्ति चाहिए।

vi. दूध जब से बिकने की वस्तू हुई तब से गाय उपयोगी हो गयी, कोई माने या न माने गायों की या किसी की दशा या दुर्दशा तभी शुरू होती है जब वह- बिकने की वस्तु हो जाती है-जैसे गाय, भैंस, बकरी अन्य जानवर गुलाम, ज्ञान-विज्ञान। जब समाज में इतना कुछ बिक जाता हो-वहाँ लोगों का यह बोलना स्वाभाविक है कि हर चीज बिकती है खरीदार चाहिए। खरीदार को पता होना चाहिए कि वह वस्तु-इंसान या जानवर कहाँ मिलता है। ऐसे में जो यह कहते है कि हर चीज नही बिकती-वह दुखी रहते है, अपमानित होते है या मार दिये जाते है।

vii. तथाकथित गाय प्रेमियों पालने वाले और गाय मांस को खाने वालों में बहुत से समानता दिखती है। गाय पालने वाला कहता है-गाय बहुत उपयोगी है, इसलिए हमने गाय को माँ कहा है, गाय के पंचगव्य से (मूत्र, गोबर, दूध, दही व घी) मनुष्य का कल्याण होता है।

गाय मांस खाने वाले ऐसा कुछ नहीं कहता, वह सिर्फ गाय पालने वालों को दूध वाली चाय/कॉफी की आदत डलवाना है, गाय पालने के लिए लोन दिलवाता है-और प्रचार करवाता है। गाय पालो खुब गाय पालो, यदि तुम गाय नहीं पालोगे तो हमे मांस खाने को कैसे मिलेगा, खाल कैसे मिलेगी, हड्डियों का चूरा कैसे मिलेगा। मांस खाने वाले खुद बिना दूध की चाय पीते है। गाय का मांस खाने वाला ज्यादा चतुर/बदमाश नजर आता है, गाय प्रेमी परिश्रम करता है, परेशान रहता है, कोई अहिंसक ऑटोमेटिक प्लांट से मांस तैयार करता है और वह आराम से इन सब की मेहनत को गाय मांस के रूप में खाता है।

गाय प्रेमी शान के साथ कहता है कि देश मे इतना दूध उत्पादन होता है, गाय के दूध की नदियां बहाने की बात करता है, और वहाँ कोई आटोमेटिक प्लांट वाला गाय का मांस खाने वालों के लिए गाय के खून की नदिया बहाता है।

viii. गाय के विषय में यह बात भी सोचने वाली है कि अगर गाय न कटी होती नंदी बचपन में ही नाही मारे गये होते तो उन गायों, नदियों का क्या होता-जिन्होने दूध देना बंद कर दिया, तब देश में कितनी गाय होती-उनके खाने का क्या होगा? यह प्रश्न विचारणीय है, जब आज के दिन में गांवों से लेकर दिल्ली तक में गाय कचरा-खाती दिखती है। कोई मौसम हो-सर्दी, गर्मी, वर्षा वह खुले में दिखाई देती है। क्या यह समाज का विषय नहीं है।

ix. भारत में कहते है भोले की फौज करेगी मौज, यह तभी संभव है जब नंदी उनके साथ पलेगा, स्त्रिया तभी सुरक्षित रहेगी एवं इज्जत पायेगी जब गाये इज्जतदार व्यवहार पायेगी और बच्चे भी ताकतवर होंगे जब गाय के बच्चे भी ताकतवर होंगे।

किसी का हिस्सा छीन कर कोई लम्बे समय ताकतवर नही रह सकता उसका बरबाद होना पक्का है-शुरुवात हमें ही करनी है-एक सुखद वातावरण बनाने की। बढो का सम्मान, की छोटा को प्यार, कमजोरो की देखभाल यही सही है।
मनुष्य के पाँच माँ बाप कहे जाते है -

1. जन्म देने वाले माता-पिता
2. धरती माता-आकाश पिता,
3. गंगा माँ (नदियाँ)-समुद्र पिता,
4. गाय-माँ-नंदी पिता,
5. मातृभाषा-तरंगे (vibration)-शब्द ब्रह्म पिता

x. प्रकृति आगे चले, माता-पिता का सम्मान, एवं आशीर्वाद बना रहे यह तभी संभव है-यही व्यक्ति का कर्म है-धर्म है स्थानीय से सभी स्तर पर, यही शाश्वत कर्म है- सनातन कर्म है यही धर्म सनातन है।

गाय एक पूरी-की पूरी संस्कृति है, जैसी स्थिती गाय-नंदी के होगी-वैसी है स्थिती पूरे मानव समाज की होगी, जो व्यक्ति, परिवार, समाज स्थिती ठीक करने के बारे में सोचता है-संलग्न है-उसे यह ध्यान रखना उचित रहेगा। कि कैसे जिन्हें वह पूजता है-उनका लोग अपमान करते है, उसके साथ अत्याचार करते है और फिर उसे मारकर खा भी जाते है वह भी धार्मिक अनुयायियों के सहयोग से।

गाय माँ एवं नंदी, शिव के गण को नाराज करके हम ठीक नहीं रह सकते यह धार्मिक वक्तव्य हो सकता है लेकिन जंगलों में बैठे बुजुर्गवार यही कहते हैं।

***

9- धर्म, धर्म संस्थान और राजनीति (पॉलिटिक्स) क्या हैं?-

'ऑल्टरनेट इकॉनमी' पुस्तक से

धर्म, धर्म संस्थान और राजनीति (पॉलिटिक्स) क्या हैं?

(अ). धर्म - जो व्याप्त है वह धर्म है, या धर्म पूरी पृथ्वी का सार है (धार्यते इति धर्मः, धरा का मर्म धर्म है) । संस्कृत में कहते हैं कि संसार (पूरी पृथ्वी या धरा) के लिए 'धर्म- सनातन' है, जबकि 'रिलीजन' (मज़हब) धर्म का क्षेत्रीय रूप है; जैसे–हिंदुस्तान के लिए हिंदू धर्म और यहूदियों के लिए यहूदी धर्म (जुडाह/यरूशलेम)। बुद्ध, जैन और सिख हिंदुओं के मुख्य उपभेद हैं जबकि ईसाई, मुस्लिम और बहाई यहूदियों के मुख्य उपभेद हैं (धर्म सम्पूर्ण धारा का और रिलिजन रीजन का।

धर्म आज़ादी और प्रेम के गुणों और उनकी विशालता पर टिका है, न कि भूत-प्रेत या नर्क के डर से, या फिर लोगों को डरा-धमकाकर और जेल की सज़ा देकर–जैसा कि कई रिलिजन /संप्रदाय/पंथ करते हैं। धर्म कल्याणकारी है और जीवन के सभी लेन-देन के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है; यह न तो खुद को व्यापार में शामिल करता है और न ही व्यावसायिक संस्थाओं का समर्थन या पक्ष लेता है। साथ ही, यह किसी राजनेता, शासक या विस्तारवादी ताकतों का पिट्ठू, प्रचारक या मुखौटा संगठन भी नहीं बनता है। धर्म कभी भी किसी को यह वर्दी पहनने या उस तरह के बाल कटवाने के लिए नहीं कहता, 'यह पढ़ें और वह देखें', 'व्यायाम (योगिक या एरोबिक) करते समय उपदेशों को सुनें' धर्म मूल रूप से जीवन को स्थायी तरीके से स्वस्थ और पवित्र बनाने में तल्लीन है।

धर्म कभी भी भगवान को खुश करने के लिए इंसानों या उनके विकल्प के तौर पर नारियल, बकरी, भैंस, भेड़, ऊँट आदि की बलि देने के लिए नहीं कहता है। धर्म कभी भी किसी से नंदी या भैंसे को बधिया करने, पुरुषों का खतना करने या लड़कियों के जननांगों को विकृत करने के लिए नहीं कहता–चाहे इसके पीछे उन्हें ब्रह्मचारी बनाने का दबाव हो, या फिर उन्हें ईश्वर को प्रतीकात्मक रूप से समर्पित मानकर किसी बड़ी बलि से बचाने का मकसद हो।

धर्म किसी की भी–चाहे वह इंसान हो या पेड़–बढ़त को रोकने और उन्हें बौना या बोन्साई बनाने के लिए नहीं कहता। धर्म बस हमसे यही कहता है कि हम जीवन का जश्न मनाएं और दूसरों को भी ऐसा करने दें; वही खाएं जिससे मन का संतुलन बना रहे और वही पिएं जिससे वाणी में संयम बना रहे। धर्म कभी किसी को पूजा करने के लिए मजबूर नहीं करता और न ही किसी भी तरह से–चाहे वह मूर्ति पूजा हो, निराकार की पूजा हो या खुद की पूजा करवाना हो–पूजा करने से रोकता है; धर्म बस यही कहता है कि इंसान अपनी अंतरात्मा की आवाज़ या सहज विश्वास का

पालन करे और अपना कर्म करता रहे (इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि काम ही धर्म है और काम ही पूजा है)। अंग्रेज़ी में 'धर्म' के लिए कोई सटीक शब्द नहीं है; इसलिए 'धर्म' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।

पूरी दुनिया एक है, लेकिन 'एक बड़ा परिवार' ही धर्म की सबसे बुनियादी समझ है। अब तक कई रिलिजन/संप्रदाय/पंथ इस बात को मानने में हिचकिचाते रहते हैं, जब तक कि वह सभी रिलिजन/संप्रदाय/पंथ और रंगों के लोगों को अपने रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के नज़रिए को अपनाते हुए नहीं देख लेते है । अब, बीमारी के फैलने और दुनिया भर में लॉकडाउन ने यह साबित कर दिया है कि दुनिया एक है; अगर दुनिया एक न होती, तो भला एक ही बीमारी पूरी दुनिया के लोगों को कैसे प्रभावित कर सकती थी?

(ब).धर्म-संस्थान (धार्मिक संस्थाएँ): धर्म-संस्थान एक ऐसी संस्था है जो बिना किसी भेदभाव या पूर्वाग्रह के, आत्मनिर्भर तरीके से पूरे समाज की सभी ज़रूरतों को पूरा करती है। ऐसे आत्मनिर्भर धर्म-संस्थान सदियों से लगातार काम करते आ रहे थे। असल में, इस प्रणाली/सिस्टम के लगातार काम करते रहने की वजह से ही, इसे 'शाश्वत/सनातन' नाम दिया गया है। इसके अलावा, क्योंकि इन संस्थानों का कामकाज पूरी धार्मिकता के साथ होता देखा गया है, इसलिए इन्हें 'धर्म जो सनातन है - सनातन धर्म' का नाम दिया गया है। हालांकि, कुछ लोगों का कहना है कि मामला इसके उलट है; यानी सनातनता /निरंतरता की बुनियादी समझ के कारण ही ये संस्थान लंबे समय तक लगातार काम कर पाए।

धर्म संस्थान एक ऐसी संस्था होगी जो भूखों को भोजन, प्यासों को पानी, बेसहारा लोगों को आश्रय, बीमारों को इलाज, ज़रूरतमंदों को सलाह और न्याय, बेबस लोगों को मदद, युवाओं को रोज़गार और अकेले व बुज़ुर्ग लोगों को सम्मानजनक काम देगी। साथ ही, यह अपने आस-पास रहने वाले सभी लोगों को बिना किसी शोषण वाले माहौल में शारीरिक, आर्थिक और भावनात्मक सुरक्षा भी देगी, ताकि कोई भी बेसहारा न रहे और किसी को भी ज़बरदस्ती भीख मांगने या वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर न होना पड़े।

किसी संस्थान के लंबे समय तक सफल संचालन के बाद अक्सर आने वाली आत्म-संतुष्टि और पूर्णता को भी और बेहतर बनाने की बेवकूफी भरी इच्छा के कारण, समाज का ऐसे संस्थानों में योगदान कम हो गया; नतीजतन, धीरे-धीरे पिछले तीन हज़ार वर्षों में ऐसे संस्थान खत्म हो गए। हिंदू, पारसी, यहूदी, बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम, सिख और बहाई–इन सभी धर्मों के बारे में भले ही कितने भी व्यापक या संपूर्ण होने के दावे किए जाएं, लेकिन सच तो यह है कि इनमें से कोई

भी धर्म अपने अनुयायियों को समान स्तर पर और टिकाऊ तरीके से स्वस्थ और खुशहाल जीवनशैली नहीं दे पाया है, इसलिए, 'धर्म संस्थान' का पुनरुद्धार ही एकमात्र विकल्प कहा जा सकता है, ताकि पृथ्वी पर जीवन में फिर से नई ऊर्जा और ताजगी आ सके।

(स). राजनीति-पॉलिटिक्स: राजनीति शासन की एक नैतिकता है और नैतिकता के आधार पर सरकार का काम भी है, जबकि नैतिकता वह है जो पृथ्वी और उसके पर्यावरण से निकलती है (नीति नियामक से आती है) । जैसे-जैसे समय के साथ पर्यावरण बदलता रहता है, वैसे-वैसे पर्यावरण को एक गतिशील इकाई कहा जा सकता है। पर्यावरण की तुलना में पृथ्वी को एक स्थिर इकाई कहा जा सकता है। चूंकि राजनीति ज़मीन से मज़बूती से जुड़ी है, इसलिए इसे स्थिर कहा जा सकता है; लेकिन चूंकि राजनीति पर्यावरण से भी प्रभावित होती है, इसलिए यह गतिशील भी बन जाती है।

इस मिश्रण को देखते हुए, राजनीति को एक अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति माना जाता है, जो मज़बूती से जमी हुई है, फिर भी काफ़ी लचीली है। इस परिभाषा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि राजनीति कोई नौकरी या पेशा नहीं है, बल्कि समाज और उसके आस-पास के माहौल की सामूहिक भलाई के लिए समाज के प्रति एक जुड़ाव या सेवा-भाव है। ऐसी राजनीति वे लोग कर सकते हैं जिन्हें परिवार की बुनियादी ज़रूरतों के लिए अपने समय और पैसे की ज़रूरत नहीं होती–यानी, जब उनके बच्चे शादी-शुदा हों–और वे तब तक इस राजनीति में बने रह सकते हैं जब तक उनके बच्चे उनकी जगह लेने के लिए तैयार न हो जाएँ। इसका मतलब है कि सक्रिय राजनीति (वोट देने और चुनाव लड़ने, दोनों) के लिए उम्र लगभग पचास से पचहत्तर साल हो सकती है। पचहत्तर साल की उम्र के बाद, ऐसी सम्मानित हस्तियाँ आम तौर पर नए लोगों को शिक्षा और प्रशिक्षण देने के काम में लगना पसंद करती हैं।

राजनीति एक पेशा है और राजनेता पेशेवर होते हैं; इसलिए उन्हें निश्चित रूप से अन्य उन पेशों के बराबर ही माना जाना चाहिए जिनकी देश और समाज के सुचारू कामकाज के लिए ज़रूरत रहती है। पॉलिटिक्स मूल रूप से रिलिजन/पंथ/संप्रदाय के ग्रंथों और/या देश के संविधान में तय नियमों और कानूनों के आधार पर व्यवस्था बनाए रखने का काम है। चूंकि देश का संविधान स्थिर है (हालात और समय बदलने पर भी यह कमोबेश वैसा ही रहता है), इसलिए अक्सर यह पाया जाता है कि अलग-अलग समय पर सामने आने वाले मुद्दों से निपटने में संविधान अक्षम साबित होता है। अंग्रेज़ी में 'राजनीति' के लिए कोई सटीक शब्द नहीं है; इसलिए 'राजनीति' शब्द का ही इस्तेमाल किया जाता है। ***

10- कविता, 'धर्यते इति धर्म' किताब से

सत्य शब्द परीक्षित होते हैं,

सत्य शब्द अनुभव सिद्ध और चखे होते हैं,
सत्य शब्द स्वच्छ होते हैं और हृदय को शुद्ध करते हैं,
सत्य शब्द वास्तव में सुन्दर होते हैं,
सुन्दर शब्द सत्य के बबूले हैं।

ऋषि घोषणा करते हैं,
बुद्धिमान समझते और कहते हैं,
बौद्धिक बहस और दावा करते हैं,
नेता सुनते और नेतृत्व करते हैं,

अनुगामी ग्रहण करते और पीछे चलते हैं,
कुछ पाने के लिये कुछ छोड़ना होता है,
सबकुछ पाने के लिये सबकुछ छोड़ना हैं।

समाज के संस्तर और समाज का स्तर,
छोड़ने पर निर्भर करता है, छोड़ो,
प्रेम करो और जियो,
क्यों, क्या, कहां, कब, कितना और किसे,
धर्म ही निर्देशक है,

***

11- अलग-अलग रेलिजनो/सम्प्रदायों/पंथों में विवाद का विषय, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी' (Alternate economy) से अंश:-

<u>समकालीन रेलिजनो/सम्प्रदायों/पंथों में विवादास्पदता(रिलिजन-धर्म की क्षेत्रीय अभिव्यक्ति)</u>

(1). रिलिजन/संप्रदाय/पंथ क्यों नाकाम हो रहे हैं और अप्रासंगिक होते जा रहे हैं? क्योंकि जब किसी को कोई समस्या होती है और वह किसी रिलिजन/संप्रदाय /पंथ के स्थल पर जाता है, तो उसे केवल उपदेश ही मिलते हैं–चाहे वे उपदेश पुजारियों द्वारा खुद गढ़े गए हों या किसी पवित्र ग्रंथ से लिए गए हों–और बात वहीं खत्म हो जाती है, बिना किसी वास्तविक और दिखाई देने वाली मदद के।

उन्हें फिर से उसी स्थिति का सामना करने के लिए खाली हाथ लौटना पड़ता है–चाहे वह बुनियादी भूख, कपड़े या रहने की जगह की समस्या हो, या फिर घर-पड़ोस से दूर शांतिपूर्ण माहौल पाने या अपनी रचनात्मकता को ज़ाहिर करने के लिए किसी जगह की ज़रूरत हो।
इसके अलावा, ऐसी स्थिति के बारे में सोचिए जब परिवार में कोई मामूली झगड़ा या अनबन हो जाए, और कोई व्यक्ति एक रात या कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहे ताकि मामला शांत हो जाए और अपने-आप सुलझ जाए। लेकिन, दुर्भाग्य से, अभी किसी ऐसे व्यक्ति के लिए रहने की कोई सम्मानजनक जगह नहीं है जिसके पास पैसे न हों; यह समस्या महिलाओं के लिए और भी गंभीर है, चाहे भारत हो या कोई और जगह। कहने का मतलब यह है कि हम सब ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहाँ हर इंसान के मन में भोजन, कपड़े और रहने की जगह को लेकर जो असुरक्षा है, उसी के कारण इस प्रणाली/सिस्टम को सुरक्षा मिल रही है।

क्या हम इसे सुखद और स्वस्थ स्थिति कह सकते हैं, क्या कोई रिलिजन/संप्रदाय/ पंथ अपने मानने वालों और न मानने वालों के लिए ऐसी असुरक्षित, अस्वस्थ और दुखद स्थिति को सही ठहरा सकता है? इस समस्या को इस तरह भी समझा जा सकता है कि हर रिलिजन/संप्रदाय/ पंथ अपने मानने वालों से योगदान तो मांगता है, लेकिन असल ज़िंदगी की समस्याओं का कोई समाधान नहीं देता।

लगभग हर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के साथ ऐसा ही है, चाहे वह हिंदू, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिख या बहाई धर्म हो। हालांकि कुछ रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के स्थल मुफ़्त सामुदायिक भोजन और कुछ दिनों के लिए मुफ़्त रहने की सुविधा देते हैं, लेकिन इससे ज़्यादा कुछ नहीं। ऐसे हालात में कोई तथाकथित आस्था केंद्रों में अपना भरोसा कैसे बनाए रख सकता है?

(2). धर्म और धार्मिक संस्थानों का पुनरुद्धार आज के समय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है, क्योंकि धर्म की बुनियादी बातें भी अब विवाद का विषय बन गई हैं, जिससे हमारी सेहत पर असर पड़ रहा है और हमारा जीवन कष्टमय हो रहा है। ऐसा लगता है कि हर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के गुरु धर्म की बुनियादी बातों को नज़रअंदाज़ कर रहे हैं। असल में, धर्म/आस्था ही आधार है जिस पर राजनीति का ढांचा खड़ा होता है। इसलिए, भोजन, पानी, कपड़े, रहने की जगह, रोज़गार, मनोरंजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय प्रशासन और न्याय जैसी बुनियादी ज़रूरतों का ध्यान रखना धर्म /आस्था के केंद्रों की ही मूल ज़िम्मेदारी है।

हर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के के गुरुओं ने अपने समुदाय, अनुयायियों और समर्थकों को ये सेवाएँ देने के बजाय, खुद को मरने के बाद की ज़िंदगी के सपने दिखाने, अनुयायियों में डर पैदा करने और अपने धर्म को श्रेष्ठ तथा दूसरों को कमतर दिखाने में ही व्यस्त रखा; और इस तरह उन्होंने समाज में शांति और सद्भाव के बजाय नफ़रत और दुश्मनी को ही ज़्यादा बढ़ावा दिया। इन सभी रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के गुरुओं ने मिलकर न केवल अपने अलग-अलग अनुयायियों के, बल्कि पूरे समाज के विश्वास को ही हिलाकर रख दिया है।

चूंकि आस्था हर जीवित प्राणी में जन्मजात और केंद्र (हृदय) में होती है, इसलिए जब आस्था डगमगाती है, तो यह स्वाभाविक है कि हृदय अनियमित रूप से काम करेगा। अगर यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहती है, तो यह व्यक्ति के अंदरूनी संतुलन और रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बिगाड़ देगी, इससे शुगर लेवल में गड़बड़ी (डायबिटीज), निराशा (दिल की बीमारी), बेबसी (कैंसर) जैसी समस्याएं हो सकती हैं और व्यक्ति कई तरह की अन्य बीमारियों का आसानी से शिकार बन सकता है।

मेडिकल डेटा से पुष्टि होती है कि बीमारियाँ बहुत तेज़ी से बढ़ रही हैं। इससे साफ़ पता चलता है कि समाज में उम्मीद जगाने वाली संस्थाएँ (धार्मिक संस्थान) अपने अनुयायियों में उम्मीद पैदा करने में बुरी तरह नाकाम हो रही हैं।

क्या समाज के लिए उम्मीद न होने से भी बदतर कोई स्थिति हो सकती है, शायद हालात की इसी गंभीरता को देखते हुए ही अलग-अलग रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के संस्थापकों ने मिलकर यह कल्पना की थी कि मौजूदा समय (बीसवीं सदी) या तो कयामत का समय है, या किसी नए मसीहा के अवतार का, या बुद्ध के पुनर्जन्म का, या ईश्वर के किसी नए संदेशवाहक के आने का, या फिर यह बस एक नए युग में बदलाव का समय है?

(3). ऐसा लगता है कि सभी रिलिजनों/संप्रदायों/पंथों ने अपनी प्रासंगिकता खो दी है–जिसे कोरोना-कोविड ने भौतिक दुनिया में स्पष्ट रूप से दिखा दिया है–और ऐसा प्रतीत होता है कि मूल धर्म पुनर्जीवित होने की प्रतीक्षा कर रहा है। यह देखकर हैरानी होगी कि अब जैन और बौद्ध रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के लोग हथियारों और आक्रामकता की बात कर रहे हैं, जबकि मुसलमान शांति और सुकून की बात कर रहे हैं; हिंदू कह रहे हैं कि यह बदलाव का समय है, और यहूदी कह रहे हैं कि यह आखिरी पीढ़ी है (तोराह - धार्मिक ग्रंथ के अनुसार)।

बुद्ध के अनुसार, उनका धर्म पच्चीस सौ साल तक चलेगा और उसके बाद वे मैत्रेय के रूप में फिर से जन्म लेंगे। ईसाई धर्म में कयामत (दुनिया के अंत) के बारे में काफी चर्चा होती है। पैगंबर साहब ने खुद को आखिरी पैगंबर तो कहा, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि चौदह सौ साल बाद दो ऐसे लोग आएंगे जो दुनिया में शांति कायम करेंगे। जैन और सिख धर्म को हिंदू धर्म से निकले हुए और उसी से जुड़े हुए पंथ कहा जा सकता है। मौजूदा हालात जो भी हों, वे नाजुक लग रहे हैं और समाज में सीधी और खुलकर बातचीत की मांग करते हैं।

(4). धार्मिक मतभेदों की गंभीरता को न केवल दूसरे विश्व युद्ध के दौरान हुए धार्मिक नरसंहार के ज़रिए वैश्विक स्तर पर देखा जा सकता है, बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप में भी धार्मिक नफ़रत और उसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर हुई हत्याओं की कई घटनाओं के ज़रिए क्षेत्रीय स्तर पर भी स्थिति की गंभीरता को समझा जा सकता है। भारत का बंटवारा, थाईलैंड, श्रीलंका, म्यांमार, पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफ़गानिस्तान में टकराव और जातीय सफ़ाया, भारतीय उपमहाद्वीप की कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो रोंगटे खड़े कर देती हैं। ये सभी जातीय हत्याएं और जातीय सफाए की घटनाएं कोई इक्का-दुक्का या अलग-थलग मामले नहीं हैं, बल्कि ये रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के द्वारा फैलायी गई नफ़रत का नतीजा हैं। यह नफ़रत खुद रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के गुरुओं ने फैलाई है–न सिर्फ़ दूसरे रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के के ख़िलाफ़, बल्कि अपने ही रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के के अलग-अलग पंथों के बीच भी–और इसमें नस्ल, जाति, वर्ग और रंग के आधार पर भेदभाव भी शामिल है।

जो लोग कहते हैं कि रिलिजन/संप्रदाय/पंथ न तो नफ़रत कुरना सिखाता है और न ही फैलाता है, वे असल में शुतुरमुर्ग की तरह व्यवहार कर रहे हैं। वे दुनिया के मौजूदा हालात को नज़रअंदाज़ कर रहे हैं, जहाँ कई तथाकथित गुरुओं और पुजारियों को न सिर्फ़ लोगों में डर और नफ़रत फैलाते पाए गया हैं, बल्कि यह स्वयं किसी न किसी रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के ख़िलाफ़ अपराध को बढ़ावा देने में भी शामिल रहे हैं।

हैरानी की बात है कि हर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के उपदेशक और पुजारी कहते हैं कि उनका ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्वोच्च है, फिर भी ऐसे गुरु और पुजारी यह मानकर चलते हैं कि उनका तथाकथित ईश्वर उस पड़ोसी को आशीर्वाद नहीं देगा जो उसी ईश्वर को किसी दूसरे नाम से पुकारता है और अलग तरीके से प्रार्थना करता है।

इसके अलावा, हर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के ऐसे गुरु पूरे भरोसे के साथ कहते हैं कि उनका सर्वशक्तिमान ईश्वर निश्चित रूप से उन पड़ोसियों तक नहीं पहुँचेगा जो उनके ईश्वर के स्वरूप का सम्मान नहीं करते, उसे समझते नहीं और न ही मानते हैं; और निश्चित रूप से वह उस व्यक्ति तक भी नहीं पहुँचेगा और उसे आशीर्वाद नहीं देगा जो उनके ईश्वर के स्वरूप के बारे में जानता ही नहीं है। क्या इसमें कोई तुक है?

क्या कोई पुजारी या गुरु इस बात पर विचार कर सकता है कि उनका सर्वशक्तिमान ईश्वर इतना छोटा कैसे है कि वह अपने उस पड़ोसी तक नहीं पहुँच पाता जो उनकी जैसी सोच नहीं रखता, और ऐसे पड़ोसी को नास्तिक, अधार्मिक या शैतान तक करार दिया जाता है और उसे भयानक सज़ा का हक़दार माना जाता है?

इस अफरातफरी को देखकर आसानी से समझा जा सकता है कि धर्म की व्यापकता धीरे-धीरे लेकिन लगातार कम होती गई है–पहले व्यापकता से मानवता, फिर मानवता से रिलिजन/संप्रदाय/ पंथ वाद तक, संप्रदायवाद से क्षेत्रीय संप्रदायवाद, फिर स्थानीयता और आखिर में व्यक्ति-केंद्रित सोच तक। इससे पता चलता है कि न केवल परिवार और समाज का ताना-बाना बिखर गया है, बल्कि पूरा माहौल ही उलट-पुलट हो गया है। इसने हमारे अस्तित्व पर भी सवाल खड़े कर दिए हैं। इस स्थिति को देखते हुए क्या कहा जा सकता है, हम किस ओर बढ़ रहे हैं?

I. नरसंहार वाले एक और विस्वा युद्ध की ओर?
II. कयामत की ओर (जैसे- एक ताकतवर गुट कहता था कि 21 दिसंबर, 2012 कयामत का दिन होगा)।
III. किसी ऐसे हालात का बलि का बकरा बनने की ओर जिसे किसी ने कयामत का दिन साबित करने और खुद को मसीहा घोषित करने के लिए योजनावद्ध किया हो।
IV. क्या यह धरती छोड़कर मंगल ग्रह पर बसने का समय है?
V. क्या यह बुराई के खत्म होने और नेकी के फिर से ज़िंदा होने का समय है?

(5). ऐसा लगता है कि लगभग सभी रिलिजन/संप्रदाय/पंथ आधुनिक समय की बीमारियों के हमले के आगे झुक गए हैं; नतीजतन, पूजा-पाठ के लगभग सभी केंद्र और उनके पुजारी बीमारी के आदेशों के आगे नतमस्तक हो गए हैं और उन्होंने अपने अनुयायियों को मौत के तांडव का सामना करने के लिए छोड़ दिया है। स्थिति तब चिंताजनक हो जाती है जब लोगों को पता

चलता है कि पूजा-पाठ की कई अहम जगहों को भी लॉकडाउन के दायरे में लाया जा सकता है और वे भी किसी आपात स्थिति या संकट के समय सांत्वना या राहत नहीं दे पातीं। जब वेटिकन, मक्का-मदीना और यरूशलेम जैसे आस्था और पूजा-स्थलों समेत लगभग सभी केंद्र बंद पड़े हों, तो आम लोगों की आस्था कैसे बरकरार रह सकती है?

इन सभी मंदिरों, मस्जिदों, मठों और चर्चों के बंद होने और उन पर ताला लगने से मूल रूप से यह संदेश गया है कि पूजा-पाठ के इन केंद्रों और वहां के गुरुओं पर भरोसा नहीं किया जा सकता और वे अप्रासंगिक हो गए हैं। इसने न केवल इन केंद्रों की पवित्रता और निरंतरता पर, बल्कि इनके अस्तित्व और यहां होने वाले सामान्य रीति-रिवाजों पर भी गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। ऐसे हालात में, क्या हम सबके लिए यह समझदारी भरा नहीं होगा कि हम खुले मन और बड़े दिल से इस मुद्दे पर विचार करें और तय करें कि क्या ऐसे सेंटर्स को छोड़ दिया जाए, हमेशा के लिए बंद कर दिया जाए, सम्मान के साथ खत्म कर दिया जाए, या फिर इतिहास और टूरिज़्म से जुड़े म्यूज़ियम समेत दूसरे कामों के लिए इस्तेमाल किया जाए?

ऐसे हालात में, जब हर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ अपने मौजूदा रूप में हाल की स्थितियों से निपटने में नाकाम साबित हुआ है, तो किसी का खुद को धर्म का ठेकेदार बताना, अपने रिलिजन/संप्रदाय/पंथ को सबसे बेहतर कहना और उसके नाम पर अपनी जान जोखिम में डालना या दूसरों की जान लेना बेकार और बेतुका है। जैसे प्रकृति खाली जगह को पसंद नहीं करती, वैसे ही लॉकडाउन के बाद भले ही रिलिजन/संप्रदाय/पंथ की गतिविधियां पहले की तरह शुरू हो गई हों, लोगों को यह समझ आ गया है कि प्रार्थना एक निजी चीज़ है। इसे अकेले, परिवार के साथ या ग्रुप के साथ ऑनलाइन भी किया जा सकता है, न कि सिर्फ़ पहले की तरह सामूहिक प्रार्थना के ज़रिए। हमें इस मुद्दे पर हर स्तर पर चर्चा करने की ज़रूरत है कि भविष्य में लोग सामान्य दिनों के साथ-साथ ज़रूरत और आपातकालीन स्थितियों में भी अपना भरोसा कैसे बनाए रख सकते हैं और कैसे सुकून पा सकते हैं।

(6). आज चलन में मौजूद हर रिलिजन/संप्रदाय/ पंथ चाहे वे खुद को कितना भी बड़ा, शानदार, बेहतरीन या सर्वश्रेष्ठ क्यों न बताते हों, पर सच तो यह है कि इनमें से कोई भी रिलिजन/संप्रदाय/पंथगुलामी, ज़बरदस्ती भीख मंगवाने और वेश्यावृत्ति (जिन्हें किसी भी सभ्यता पर एक कलंक माना जा सकता है) जैसी समस्याओं का कोई समाधान नहीं देता। बल्कि, इनमें से ज़्यादातर रिलिजन/संप्रदाय/पंथ या तो इस पर चुप्पी साधे रहते हैं या फिर गुलामी, भीख मांगने और वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देते पाए गए है । इसके अलावा, बौद्ध रिलिजन/संप्रदाय/पंथ के बाद के सभी रिलिजनों/संप्रदायों /पंथों ने शायद उन बुनियादी मुद्दों पर ध्यान देना छोड़ दिया है या उन

पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं समझी, जिन पर जीवन में ध्यान देना ज़रूरी है–जैसे कि अर्थव्यवस्था, रोज़गार, मनोरंजन, ऊर्जा, पर्यावरण, नैतिकता, शिष्टाचार, प्रदूषण, जनसंख्या, गरीबी, वेश्यावृत्ति, स्वच्छता, साफ़-सफ़ाई और स्वास्थ्य।

इन सभी रिलिजनों/संप्रदायों /पंथों में इस तरह की कमियों के कारण, इनके मानने वाले बाज़ार के राक्षसों और चालाकी के उस्तादों का आसानी से शिकार बन गए। इन सभी रिलिजनों/संप्रदायों/पंथों की इस बुनियादी कमी के कारण, इनके मानने वालों को बाज़ार की ताकतों द्वारा आसानी से इस्तेमाल या हेर-फेर का शिकार बनते देखा गया; वे (रिलिजनों/संप्रदायों/पंथों के गुरु और उनके चेले) पाखंडी, अंदर से डरे हुए लेकिन बाहर से निडर दिखने वाले, और स्पष्टता की कमी वाले पाए गए। हालांकि इन सभी रिलिजनों/संप्रदायों/पंथों ने शांति का संदेश दिया है, लेकिन अंततः वे मानवता को प्रकृति की सहनशक्ति से कहीं अधिक टुकड़ों में बांटने के अपराध में भागीदार बन गए हैं।

ऐसे हालात में क्या हमें किसी चमत्कार का इंतज़ार करना चाहिए या आसमान से किसी नए देवता के उतरने का, या फिर हमें कोई ठोस कदम उठाकर आगे आना चाहिए और मूल धर्म और धर्म-संस्थानों को फिर से जीवित करना चाहिए । अगर हम ऐसा करते हैं, तो ईश्वर निश्चित रूप से हमें आशीर्वाद देंगे।

***

12- सबसे अच्छी शासन प्रणाली क्या हो सकती है:-

"सबसे अच्छी शासन प्रणाली (सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक-राजनीतिक) क्या हो सकती है?" विषय पर आयोजित एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में, जिसमें कई विदेशी मंत्रियों और अन्य प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक विचारकों ने भाग लिया, एक वक्ता ने कहा: "अगर हममें से कोई भी, जीवन के किसी भी मोड़ पर कमज़ोर, बेसहारा, destitute या अकेला पड़ जाता है, तो उस समय सरकार से हमारी क्या उम्मीद होगी? जो सरकार उस समय हमारी उम्मीदों को पूरा कर सके, उसे ही अच्छी सरकार कहा जा सकता है।"

देखा गया है कि लोग बहुत ज़्यादा निराशा और बेबसी के समय ईश्वरीय शक्ति को याद करते हैं; और अगर उस समय और उस जगह की सरकार ऐसे लोगों की ज़रूरतें पूरी कर पाती है, तो उसे सबसे अच्छी सरकार कहा जा सकता है, और स्थितियों व लोगों से निपटने के उसके तरीके में ईश्वरीय गुण भी हो सकते हैं। आम लोगों में ऐसी सरकार पाने की इच्छा आसानी से देखी जा सकती है और उच्च वर्गों में भी इसके असर की एक दबी हुई लहर महसूस की जा सकती है। दुनिया भर के कई नेताओं के बीच यह आम चर्चा है कि सरकार ऐसी होनी चाहिए जो प्राकृतिक कानूनों पर आधारित हो और नागरिकों के साथ व्यवहार में दिव्यता या मानवीय गरिमा का भाव रखे, न कि ऐसी सरकार जो केवल शासक और शासित, या मालिक और प्रजा के बीच के संबंध पर टिकी हो।

13- “सामाजिक सुरक्षा की अर्थव्यवस्था और अर्थव्यवस्था की सामाजिक सुरक्षा” किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी' से अंश :-

सामाजिक सुरक्षा की अर्थव्यवस्था और अर्थव्यवस्था की सामाजिक सुरक्षा-

चाहे यह सच हो या सिर्फ़ एक आशंका, लेकिन हाल ही में दुनिया भर में लगे लॉकडाउन और महामारी के कहर ने एक बात तो साफ़ कर दी है कि वायरस से संक्रमित एक अकेला व्यक्ति न सिर्फ़ अपने परिवार और साथ रहने वाले करीबी लोगों को संक्रमित कर सकता है, बल्कि अपने आस-पड़ोस या इलाके में रहने वाले कई और लोगों को भी संक्रमित कर सकता है। इसके अलावा, ये लोग बीमारी को फैलाने वाले संभावित वाहक (carriers) हो सकते हैं; वे जहाँ भी काम या किसी और वजह से जाएँगे, वहाँ के लोगों, घरों या इलाकों में, और जो लोग उनके घर या जगह पर काम करने आएँगे, उनमें यह बीमारी फैला सकते हैं। चूंकि हवा के घूमने और पानी के बहाव की कोई सीमा नहीं होती, इसलिए वायरस से संक्रमित कोई भी व्यक्ति–चाहे वह जीवित हो या मृत–इस बीमारी को फैला सकता है या पूरी दुनिया के लोगों को संक्रमित कर सकता है।

इस मैट्रिक्स को देखने से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि यदि कोई स्वस्थ/रोग मुक्त होना चाहता है तो यह उसके हित में है कि न केवल उसके घर, भवन, पड़ोस, शहर, देश और पूरी पृथ्वी के सभी लोग स्वस्थ/रोग मुक्त रहें। इस तरह, अगर कोई व्यक्ति या समाज दूसरों को बीमारी-मुक्त बनाने और उन्हें वैसा ही बनाए रखने में मदद करता है, तो वे दूसरों पर कोई एहसान नहीं कर रहे होते; बल्कि यह कहा जा सकता है कि वे अपने ही स्वार्थ को पूरा कर रहे हैं और उन्हें स्वार्थी भी कहा जा सकता है। इस समय यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि दुनिया को एक बड़े परिवार के रूप में समझने की सोच केवल उदारता, करुणा या परोपकार के कारण नहीं आई है, बल्कि इसके पीछे डर/खतरा, मजबूरी और पूरी तरह से स्वार्थ (दूसरों की बीमारियों/संक्रमणों आदि से खुद को बचाना) भी समान रूप से जिम्मेदार हैं।

इस बात को ध्यान में रखते हुए, अगर कोई व्यक्ति किसी बेसहारा की तरह लाचार हो जाए और उसके पास पैसे या संसाधन न हों, तो उसे किन चीज़ों की ज़रूरत होगी ताकि वह बीमारियों का आसान शिकार न बने और आस-पास के लोगों के लिए खतरा न बन जाए? क्या हो अगर वह व्यक्ति पहले से ही बीमार हो और इसी वजह से उसे अपने ही घर से निकाल दिया गया हो, या उसके अपने ही लोगों ने उसे किसी दूर-दराज़ इलाके में जीने या मरने के लिए अकेला छोड़ दिया हो, और, क्या हो अगर किसी व्यक्ति के पास पैसे तो हों, लेकिन अकेलेपन के कारण वह असहाय हो जाए?

उपरोक्त के आलावा निम्न और प्रस्तुत है:-

(i). क्या होगा अगर किसी दूसरे देश का कोई व्यक्ति (जिसे वहाँ की स्थानीय भाषा भी नहीं आती) नौकरी की तलाश में हमारे समाज, देश या किसी अन्य देश में लूट लिया जाए, बेरहमी से पीटा जाए और फिर लहूलुहान हालत में छोड़ दिया जाए, और आखिर में, अगर कोई व्यक्ति घायल हो जाए और युद्ध में गिरफ़्तार हो जाए, तो क्या होगा? और युद्ध, प्राकृतिक आपदाओं या बीमारी फैलने की वजह से बिना देख-रेख के पड़ी लाशों के प्रति हमारा क्या रवैया होना चाहिए, ताकि भविष्य में होने वाली संभावित बीमारियों से बचा जा सके?

ऐसी स्थितियों में, जब कोई बेसहारा, लाचार, बेघर, घायल और डरा-सहमा व्यक्ति अचानक सामने आ जाए, तो उससे संक्रमित या बीमार होने के खतरे से बचने के लिए केवल दो ही सही विकल्प होते हैं–बजाय इसके कि आप बेपरवाह रहें, उसे भगा दें, थोड़ी-बहुत (तुरंत वाली) मदद करें या उसकी अनदेखी करें:

(एक). व्यक्ति की जान लेना और उसके शव को खत्म या ठिकाने लगाना–चाहे वह अंतिम संस्कार, दफ़नाने, समुद्र में फेंकने या ऊंचे चबूतरे पर गिद्धों के खाने के लिए रखने के ज़रिए हो –ताकि मृत शरीर का कोई अंश न बचे और उससे न केवल समाज के लोग, बल्कि हवा, ज़मीन, जल-स्रोत और ज़मीन के नीचे का पानी भी संक्रमित न हो।

(दो). इस नए व्यक्ति (चाहे वह पुरुष हो या महिला–जैसे भिखारी, बेसहारा, वेश्या, पकड़ा गया दुश्मन, आम नागरिक या सैनिक, बेसहारा बच्चा, घर से निकाला गया युवा या अकेला बुज़ुर्ग) से संक्रमण या बीमारी के संभावित खतरे से खुद को, परिवार को और समाज को बचाने का दूसरा तरीका यह है कि उसे हर तरह की सामाजिक सुरक्षा दी जाए। इससे न केवल वह जीवित रह सके और अगर कोई पुराना सदमा हो तो उससे उबर सके, बल्कि समाज में योगदान देने या समाज का कर्ज चुकाने के काबिल भी बन सके।

(ii). सामाजिक सुरक्षा का स्वरूप चाहे जो भी हो, या समाज, इलाके, देश या राजनीतिक-आर्थिक-धार्मिक स्तर पर व्यवस्था की बागडोर किसी के भी हाथ में हो, बीमारी के फैलने के संभावित खतरे को रोकने के लिए कम से कम एक बात तो ज़रूरी है: बीमार व्यक्ति को हर संभव इलाज और भोजन, पानी, कपड़े और आश्रय जैसी अन्य बुनियादी ज़रूरतें मुहैया कराई जाएं। यह सामाजिक सुरक्षा का प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए, चाहे उस व्यक्ति के पास पैसे, संसाधन या बीमा हो या न हो।
इससे यह पता चलता है कि न केवल बीमारियों के इलाज के लिए, बल्कि उन सभी चीज़ों के लिए जिनसे इम्युनिटी कम हो सकती है और इंसान बीमार या संक्रमित हो सकता है–जैसे खाना,

पानी, हवा, कपड़े, रहने की जगह, शारीरिक सुरक्षा, सही जानकारी, सलाह और मार्गदर्शन, मनोरंजन, व्यायाम और फ़िटनेस सेंटर, और न्याय–ये सभी बिना किसी शर्त या बाद की बाध्यता के, सभी को आसानी से, समय पर और ज़रूरत पड़ने पर मुफ़्त में मिलने चाहिए।

(iii). इसके अलावा ये सेवाएँ न केवल ऊपर उल्लिखित सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध होंगी, बल्कि दिए गए समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों के लिए भी प्रतिकूल परिस्थितियों में उपलब्ध होंगी - जैसे कि घर पर कभी-कभार होने वाले झगड़ों के दौरान या यहाँ तक कि अगर कोई घर से दूर कुछ एकांत चाहता है। यानी, अगर परिवार में पति-पत्नी या बच्चों के बीच कोई छोटी-मोटी लड़ाई-झगड़ा हो जाए, तो कोई भी पुरुष या महिला कभी भी (चौबीसों घंटे) सम्मान और गरिमा के साथ इन सेवाओं का लाभ उठा सके।

इसके अलावा, यह बात अच्छी तरह से जानी-मानी और बिना किसी शक के साबित हो चुकी है कि पालतू जानवर और पक्षी भी संक्रमण या बीमारियों को फैलाने का ज़रिया बन सकते हैं। इसलिए, यह ज़रूरी है कि जीवन के लिए ज़रूरी चीज़ें–जैसे खाना/चारा, साफ़ हवा और पानी, पालतू जानवरों के लिए रहने की जगह, पक्षियों के लिए पेड़-पौधे, और किसी भी संक्रामक या आम बीमारी और दुर्घटना में लगी चोटों के इलाज की सुविधाएँ–समाज के खर्च पर, यानी स्थानीय लोगों से इकट्ठा किए गए पैसे से उपलब्ध कराई जाएँ।

(iv). अगर हम ऊपर दी गई बातों पर गौर करें, तो यह बिल्कुल साफ़ है कि मेडिकल इलाज की सुविधाएँ, न्याय-व्यवस्था, शारीरिक सुरक्षा, भोजन, पानी, रहने की जगह, मनोरंजन, कसरत और खेल का मैदान, श्मशान/कब्रिस्तान, और शिक्षा व जानकारी और मार्गदर्शन केंद्र स्थानीय समाज के दायरे में होने चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर सरकारें, चाहे वे कितने भी कल्याणकारी उपाय क्यों न घोषित करें या लागू करें, चौबीसों घंटे व्यक्तिगत जुड़ाव नहीं दे सकतीं–खासकर उस स्तर पर जो समाज कर सकता है।

अगर समाज बुनियादी सामाजिक सुरक्षा देना चाहता है, तो उसे स्थानीय सुरक्षा, हर तरह के न्याय (जूरी सिस्टम के ज़रिए), रोज़गार, स्थानीय प्लानिंग और राष्ट्रीय प्लानिंग में भागीदारी, धार्मिक ज़रूरतों, स्वास्थ्य और शिक्षा, मीडिया और मनोरंजन, पर्यावरण और स्थानीय आर्थिक गतिविधियों, टैक्स की वसूली, आस-पास के उद्योगों को चलाने में भागीदारी और दूसरे स्थानीय मुद्दों से जुड़ी सभी ज़िम्मेदारियाँ उठानी होंगी। दूसरी ओर, राष्ट्रीय सरकार का काम मुख्य रूप से संवैधानिक अदालत, रिज़र्व पुलिस और सेना, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कनेक्टिविटी (एक तरफ सड़क, रेल, जल और हवाई मार्ग, तो दूसरी तरफ ऑडियो, वीडियो और डेटा), आपदा प्रबंधन और राहत कार्य, राष्ट्रीय त्योहार और उनके आयोजन, रिसर्च और डेवलपमेंट में योगदान, विदेश मामले और अंतर्राष्ट्रीय विकास से जुड़े विभाग आदि को संभालना होगा।

***

14- खुला पत्र संख्या- 38, 42, 49, 47, 26 और एक विशेष पत्र, किताब 'काम की बात (जल, ज़मीन, जंगल पर)' से,

खुला पत्र - 38

ध्यानाकर्षण: जल, जमीन, जंगल, शुद्ध हवा, शुद्ध जल एवं साफ जमीन का चाय, कॉफी और चॉकलेट से संबंध, इस विषय में निवेदन:

ब्रिटेन, स्पेन एवं फ़्रांस के अधिकांश दुनिया पर शासन और आधुनिक औद्योगिक क्रांति के बाद के परिदृश्य को देखेगें तो जल, जमीन एवं वायु के प्रदूषण को एक बड़ी समस्या के रूप में पाएंगे।

पर्यावरण में प्रदूषण की समस्या के मूल में बिजली एवं पेट्रोल की खोज एवं इनका अत्यधिक उपयोग तथा चाय, कॉफी और चॉकलेट का अत्यधिक चलन दिखाई देता है।

बिजली और पेट्रोल से पर्यावरण में जो परिवर्तन आया उस पर तो अधिकांश लोंगो की नजर है लेकिन चाय, कॉफी एवं चॉकलेट से पर्यावरण में कितनी समस्या आई है कितना बोझ पड़ा है इस पर कम लोंगो की ही नजर है, जबकि चाय, कॉफी एवं चॉकलेट से पर्यावरण में कितना प्रदूषण बड़ा है इसका आकलन करने से ही हमारी आंखें खुलेंगी और शायद यह स्पष्ट होगा की हमें आगे क्या करना है।

सिर्फ चाय एवं कॉफी के आकलन में हम पाएंगे कि, भारत की एक सौ चालीस करोड़ जनता में करीब अस्सी प्रतिशत जनता कम से कम दिन में दो बार चाय या काफी (सौ ग्राम चाय या कॉफी) का सेवन करती है, जिसमे करीब पच्चीस ग्राम दूध, दस ग्राम चीनी एवं ढाई ग्राम चाय पत्ती, ईंधन, अतिरिक्त अदरक, इलायची, दालचीनी भी लगती है।

भारत में चाय या कॉफ़ी में खर्च होने वाले सामान को यदि वार्षिक रूप से देखा जाये तो यह करीब तीन सौ पैसठ करोड़ टन दूध , सत्तर करोड़ टन चीनी एवं बीस करोड़ टन चाय पत्ती/कॉफी लगेगी जिसको पैदा करने के लिए गायों की एक बड़ी सँख्या, गायों के लिए चारागाह, चीनी के लिए गन्ने के खेत, चाय कॉफ़ी के बागान इसके अतिरिक्त अदरक, इलायची, दालचीनी के लिए जमीन लगेगी वह करीब देश की सबसे उपजाऊ भूमि का करीब तीस से चालीस प्रतिशत बैठता है, यह वह इलाका है जहां पहले घने जंगल थे और पर्यावरण को शुद्ध हवा देते थे व जल संग्रहण करते थे ।

हाँ चाय, कॉफी और चॉकलेट के प्रयोग से अधिकांश डॉक्टरों और कुछ व्यापारियों को जरूर फायदा हुआ है, लेकिन हमें देखना होगा कि जल, जमीन, जंगल में सामंजस्य/समन्वय कैसे वना रहता है |

****

खुला पत्र-42

ध्यानाकर्षण: जल, जमीन, जंगल, शुद्ध हवा, शुद्ध जल, साफ जमीन एवं सामाजिक स्वच्छता व्यवस्था के संबंध में: -

समाज में व्याप्त कुछ कहावतों और चलन को फिर से देखने की जरूरत है:- जैसे 'खाने के पहली रोटी या पहला हिस्सा गाय का और आखरी हिस्सा कुत्ते का होता है', यह कहावत और चलन सिर्फ कहावत या हिंदू धर्म की रीति रिवाज नहीं वरन सामाजिक स्वच्छता व्यवस्था का पारिवारिक नियम रहा है ।

कालांतर में नगरों के बड़े होने और नगर पालिका, नगर निगमों के आने से मल एवं कचरा निष्कासन (सीवरेज डिस्पोजल) के नए प्रयोगों के बाद आज उपरोक्त सामाजिक स्वच्छता का पारिवारिक नियम एक वर्ग द्वारा अपनाई जाने वाली रीति रिवाज की औपचारिकता की तरह ही रह गया है।

रिहायशी इलाकों में पहले यह व्यवस्था वनी थी कि खाने का पहला हिस्सा यानी कि सब्जी-फल का छिलका, डंठल, इत्यादि और चावल-दाल का धोवन, खाना बनाने वाले वर्तनो का धोवन (वर्तन मांजने के पहले) गाय-भैंस को दिया जाए और खाने के बाद का बचा हुआ पका हिस्सा कुत्ते-बिल्ली को दिया जाए। फिर प्रातः शौच के लिए घूमते हुए नाले या नदी किनारे या जंगल में जाए तो वह सुअरों के लिए हो जाए इसलिए सुअर शहर के बाहर ही रहते थे | सुअरों की अहमियत ठंडे एवं बर्फीले इलाकों में जहां पदार्थों का विघटन देर से होता है बहुत ज्यादा थी।

जंगल में रहने वाले आदिवासियों के लिए सभी छोटे जानवर भोज्य पदार्थ थे और शहरों में रहने वालों के लिए बहुत सीमित जानवर या मछली ही भोज्य पदार्थ बनी और इस तरह से एक लम्बे समय तक जल, जमीन, जंगल के मध्य सामाजिक स्वच्छता की व्यवस्था बनी रही।

नगर निगमों के कचरा इकट्ठा करने, उसे निष्कासित करने के कारण, नगर निगम जो राजनैतिक रूप से पार्टियों की आज एक जरूरत है के कारण व्यक्तियों की सामूहिक कार्यों में भागीदारी लगभग खत्म हो गयी और सामूहिक रूप से जैविक खाद का बनना और इसका चलन ही लगभग बंद हो गया।

जरूरत है कुछ संस्थायें बंद करने की, जैसे नगर पालिका, नगर निगम,जरूरत है कुछ व्यवस्थाएं पुनः चालू करने की, जरुरत है। सफाई कर्मचारियों को उतना ही सम्मान देने की जितना घर में माता-पिता या दादा-दादी जो छोटे बच्चे के मल-मूत्र की सफाई करते है, उन्हें मिलता है। जरूरत है सफाई कर्मचारियों का मेहनताना, उनके बराबर करने की है जो दिमाग साफ करने का प्रवचन देते है। थोड़े में कहें तो सामाजिक स्वच्छता व्यवस्था के लिए समाज में व्याप्त आपसी संबंधों पर एक संवाद, सहमति की जरूरत है।

***

खुला पत्र-49

ध्यानाकर्षण: जल, जमीन, जंगल, खानपान की कहावतों के संबंध में:

कुछ प्रचार जैसे:

"एक ग्लास दूध सेहत के लिए आवश्यक है,

संडे हो या मंडे रोज खाओ अंडे,

एक सेव रोज खाने से डाक्टर/बीमारी दूर होता है (An Apple a day keeps doctors away)

खुशियों के पल हों और बैठे हम-तुम, चार यार और साथ में हो गुलाब-पाइपर सोडा",

उपरोक्त प्रचार को गौर से देखोगे तो पाओगे की यह वाकई में "बीफ- गाय- भैंस के मांस का, मुर्गा-मुर्गी के मांस का, दवाइयों का और शराब का प्रचार है जो लोकलुभावन-दोस्ताना अंदाज में, लोंगो के हमदर्द बनते हुए किया गया है, लोगों की बर्बादी के लिए किया गया है। कुछ लोगों की मति मारी गई है और वह ऐसा मकड़ जाल बुनने मैं व्यस्त हो गए हैं जिसमें अंततः मकड़ी (वह)स्वयं फस कर मर जाती है।

गाय के लिए इतने सारे-चारागाहों की आवश्यकता होने लगी कि ऐसे मकड़ जल बुनने वाले कभी अमेज़ान के जंगलों, कभी ऑस्ट्रेलिया के जंगलों, कभी रोहिंग्या जैसे पर्वतों पर आग लगवाने, फिर उसे समतल करवाने के लिए विवश हो जाते है, जिससे वहां जंगली जानवर खत्म हो जाए और आने वाले दिनों में घास पैदा हो सके जिससे गाय भैंस पाली जा सके और इन्हे दूध मिल सके और बीफ -गौमांस खाने वालों को मांस ।

लोगों की स्वतंत्र सोच लगभग खत्म हो गई और विचारक, सद्गुरु, कथावाचक, ज्योतिष, पंडित या तो व्यापारियों की शरण में चले गए हैं या खुद, कुछ छोटे-मोटे व्यापारी हो गए और उस चोले को जो गेरुआ है या श्वेत है या मुनियों की नग्नता ही हो, जिस पर लोगों का थोड़ा विश्वास अभी भी बचा हुआ को भी इंटरनेट के सहारे बर्बाद किए जा रहे हैं, जिससे पूरी की पूरी मानव जाती कीड़े- मकोड़ों या जीता जागता माँस का टुकड़ा या चलती फिरती लाश से ज्यादा नहीं रह गयी है|

शायद आज आम लोगों को ही अस्वीकृति में हाथ उठाना होगा, अपने आप को एकांत देना होगा, संवाद करना होगा, प्रार्थना करनी होगी, नहीं तो आने वाले समय में मकड़ी के जाल में फंसने और छट-पटाने के अलावा बहुत कम ही विकल्प बचे है |

जीव की हत्या, निर्जीव का दोहन सामूहिक बर्बादी लाता है, समय है महात्माओं- जंगलों में बैठे बाबाओं को भी आम जनता के सामने आने का और सभी को सुखद भविष्य की और ले चलने का ।

***

खुला पत्र-47

ध्यानाकर्षण: जल, जमीन, जंगल, इंसान को काम के संबंध में:-

कहावत है अलादीन के चिराग की: एक दिन जब चिराग को साफ किया गया तो उसमे से एक जिन्न प्रगट हुआ, प्रगट होते ही उस जिन्न ने कहा-'मेरे आका, क्या हुकुम है', क्या काम है। जो काम बताया गया, उस जिन्न ने थोड़े ही देर में वह कार्य पूरा कर दिया इसके बाद जिन्न ने फिर पूछा कि 'मेरे आका, क्या हुकुम है, क्या काम है' लोगों ने और काम बताया और जिन्न ने वह काम भी पूरे कर दिए, और फिर सामने खड़ा हो गया कि 'मेरे आका, क्या हुकुम है, क्या काम है', मुझे काम बताओ-काम बताओ, काम नहीं बताओगे तो मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा और यहां से परेशानी शुरू हुई, कुछ जिन्न द्वारा मारे गए और कुछ ने जिन्न को बेमतलब के कार्य-जैसे समुद्र के पानी को छलनी में भर कर लाओ, आसमान के तारे गिन कर वताओ या एक डंडा जमीन पर खड़ा करो और फिर उस पर ऊपर नीचे चढ़ते-उतरते जाओ तब तक जब तक हम रुकने को ना बोलें इत्यादि या कि सूखे चावल और दालें मिला दिए और उसे अलग अलग करने को कहा इत्यादि।

यह कहानी एक इशारा है, जिन्होंने जाना उन्होंने कहा कि इंसान ही वह जिन्न है जिसे काम चाहिए, जिसे यदि काम ना हो तो इंसान या तो खुद का सिर फोड़ लेगा या दूसरों का सिर फोड़ देगा, ऐसा जानने वालों ने कार्यों की एक सतत व्यवस्था बनाई जो इंसानों के गुणधर्म, रुचि-अभिरुचि, उम्र-अनुभव का ध्यान भी रखे और इस तरह वर्ण और आश्रम की व्यवस्था बनाई।

कलयुग में यह व्यवस्था लगभग विस्मृत ही रही या लोगों की श्रुती एवं स्मृति में ही रही, यथार्थ में पिछले पच्चीस सौ वर्षों में यह वर्ण और आश्रम की व्यवस्था रही हो ऐसा इतिहास में दिखाई नहीं देता है और आज तो यह समाजिक ताने-बाने की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था मशीनों के, मीडिया के शोर एवं जनसंख्या के शोर-बोझ तले कभी रही है ऐसा सुनाई भी नहीं देता ।

जरूरत है वर्ण और आश्रम व्यवस्था पर संवाद की, शायद इस वर्ण (वर्ण =वरण =चुनना= अंगीकार करना) +आश्रम (अच्छा श्रम)=वर्णाश्रम व्यवस्था में आज दिखने वाली अधिकांश समस्याएं ही समाधान में बदल जाए, जरूरत है शुरुआत करने की।

***

खुला पत्र - 26

ध्यानाकर्षण: जल, जमीन, जंगल, और समाज में व्याप्त तमाम समस्याओं, विसगंतियो एवं सम्भावित समाधानों के संबंध में:-

1, समाज में समस्याएं तथाकथित संतों एवं शैतानों की अतियों के कारण भी है, संतों एवं शैतानों की कोई सीमा नहीं होती, यह समाज को कई बार अपना खिलौना या प्रयोगशाला मानने लगते है और यही से परेशानी होती है, आम जनता का काम प्रभु से प्रार्थना करना है की वह संतों एवं शैतानों को नियंत्रण में रखे, यह कैसे होगा कहना कठिन है लेकिन प्रार्थना तो हम सब कर ही सकते है शायद संतों एवं शैतानों के मध्य मंथन से संसार के लिए कोई रास्ता निकले।

2, भारत और अन्य लोकतांत्रिक राष्ट्र इसलिए परेशान है कि इन सभी जगहों पर जनता से सारे अधिकार भी और कर्तव्य भी परोक्ष और अपरोक्ष रूप से छीन लिए गए हैं और यह जनता में से ही किसी को जो उनका प्रतिनिधि है उनको दे दिया जाता है, इसलिए जनता आपस में लड़ती रहती है और परेशान रहती है। लोकतंत्र में, जनता ही जनता पर चढ़ी रहती है, जनता ही जनता पर शासन करती है और अभी तो यह प्रतिनिधि लोकतंत्र है, सीधा सीधा लोकतंत्र है भी नहीं।

भारत और अन्य लोकतांत्रिक राष्ट्रों में परोक्ष रूप से नौकरों का ही राज्य है। और नौकरों के साथ परेशानी यह होती है कि अगर मालिक नहीं है तो एक तो नौकर काम ही नहीं करता, यदि करता भी है तो ढंग से काम नहीं करता, नौकरों का लालची होना स्वाभाविक है इसलिए वेतन के अतिरिक्त फायदे पर उसकी हमेशा निगाह रहती है, और यदि मालिक लम्बे समय तक नजर न आये तो मालिक से बड़ा मालिक खुद ही बन बैठेगा।

जब नौकर मालिक की तरह व्यवहार करने लगता है और मालिक अपनी उधेड़बुन में लगा रहता है तो घर के अन्य सदस्यों को अपने ही घर में मौहताजी में आना बहुत आसान कार्य हो जाता है, आज भारत सहित अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों की ऐसी ही दशा है।

जरूरत है लोकतंत्र वाकई में कायम हो, जनता की शासन में अपरोक्ष नहीं परोक्ष भागीदारी हो और प्रारंभिक तौर पर कलेक्टर कार्यालय में सांसद को बिठाया जाए और उसके बाद इसी हिसाब से सांसद को कार्यपालिका के अधिकार देने की जरूरत है| भारत और अन्य लोकतांत्रिक राष्ट्रों की बेहतरी के लिए हमें हमारे प्रयास इस और करने ही होंगे|

***

विशेष पत्र

ध्यानाकर्षण: जल जमीन जंगल और वायुमंडल तथा आकाश के मध्य ऊर्जा का प्रवाह:-

आध्यात्मिक जगत में चर्चा आती है कि युग के शुरुआत में सात तरह की चीजें प्रकट हुई, जैसे सात स्वर, सात रंग, सात स्वाद, इसी तरह इंसानों के भी सात प्रकार हुए,
जब इन सात तरह के इंसान के मध्य कार्य के बिभाजन को लेकर इनसे पूछा गया तो, प्रथम ने कहा 'हम तो प्रकृति के साथ ही रहेंगे, हम ऐसे नहीं बदलेंगे, युग बदलते रहे हमें इससे क्या' और वह आदिवासी ज्यों के त्यों बनी रहे। इसी तरह अन्यों ने भी अपने ही गुणों को फिर से आगे बढ़ाने का निश्चय किया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, शैतान और संतों की तरह ही कार्य करने लगे।

पूरी की पूरी प्रकृति में तीन मुख्य होते हैं, जैसे रंगों में लाल, हरा एवं नीला, स्वाद में खट्टा, मीठा, नमकीन, इसी तरह इंसानों में भी तीन मुख्य- शैतान, संत और आदिवासी।

शैतान कार्य शुरू करते हैं, लोगों के दिमाग में (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र) वह लहरें पैदा करते हैं, उन्हें उद्वेलित करते हैं, उनसे अच्छे-बुरे, नए-पुराने कार्य करा कर अपनी सत्ता कायम करते हैं, सत्ता कायम रखने की कोशिश करते है।
जब शैतानों की सत्ता, प्रकृति, आदिवासियों को परेशान करने लगती है, तब वह संतो के साथ आकर शैतानों को शांत करते हैं, शैतानों को परास्त करते हैं, उन्हें नशों में डूबा देते हैं, उनके साथ मंथन करते हैं और मंथन से निकले हुए अमृत को अपने पास रख लेते हैं। इस पूरी प्रक्रिया से शैतान निष्क्रिय हो जाते हैं और प्रकृति फिर से हरी-भरी एवं फल-फूल से आच्छादित हो जाती है।

आज की हालत देखते हुए लगता है संतों और आदिवासियों को साथ आकर तथाकथित शैतानों से मंथन करने का समय आ गया है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को चयन करने का समय आ गया है कि वह शैतानों के साथ है या संतो के, समय है प्रार्थना का, निर्णय का, और शायद मंथन का।

***

15- एग्रोनॉमी - कृषि-संस्कृति का अर्थशास्त्र या सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था, किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी-नेचुरल सिस्टमैटिक इकॉनमी' से:-

<u>कृषि-विज्ञान - कृषि-संस्कृति का अर्थशास्त्र या सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था</u>

भारत जैसे देश में, चाहे सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर से कितनी भी कमाई क्यों न हो रही हो, अर्थव्यवस्था का फलना-फूलना कृषि उत्पादन पर ही निर्भर करता है।

निम्न प्रस्तुत है, प्रस्तुतीकरण में एग्रोनॉमी (कृषि-विज्ञान) - यानी खेती-बाड़ी के अर्थशास्त्र या कृषि-अर्थव्यवस्था के बारे में जानकारी को दो हिस्सों में बिभक्त किया है: **(1).** मुद्दे और उनकी व्यापक रूपरेखा, **(2).** समाधान का खाका (मॉडल),

(1). मुद्दे और उनकी व्यापक रूपरेखा:

(1.i).भारत (और दुनिया के ज़्यादातर हिस्सों) की संस्कृति को खेती-बाड़ी से जुड़ी संस्कृति कहा जा सकता है। जब तक खेती एक संस्कृति बनी रही, तब तक यह समाज और देश की अर्थव्यवस्था में मुख्य योगदान देती रही। हमारे सभी त्योहार खेती के मौसम और समय के हिसाब से ही मनाए जाते हैं। खेती का तरीका ऐसा है कि इसमें चार-चार महीने की दो फ़सलें उगाई जाती हैं और हर फ़सल के बाद दो महीने का आराम मिलता है।
ऐसी संस्कृति में ज़्यादातर गाँव वाले अपना खाना खुद उगाकर और तैयार करके खुशी पाते हैं। यह कुछ-कुछ ऐसा है की "आप मालपुआ का सामन पैदा कर रहे हो, उसे बना भी रहे हो और खुद खा भी रहे हो - आत्मनिर्भरता का अनूठा उदहारण ।

हालांकि, अपनी संस्कृति (खेती-बाड़ी से जुड़ी संस्कृति) को मानने का चलन लगभग पच्चीस सौ साल पहले ही कम होने लगा था, जब किसानों ने खेतों में सांपों को मारना और नंदी/सांड व भैंसों को बधिया करना शुरू कर दिया था; लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद तो अपनी संस्कृति से यह जुड़ाव पूरी तरह टूट-सा गया है, हालात ऐसे हो गए कि गाय,नंदी और बैल , भैंस, खेत, पेड़ और फसलें–जिनके साथ पहले परिवार जैसा निजी जुड़ाव हुआ करता था–वे अब महज़ सामान/वस्तु या कमोडिटी बनकर रह गए।

यह बात आसान है: अगर हमारे पास सांड है, तो हमारे पास दूसरों पर दबदबा बनाने (भले ही हम ऐसा करें या न करें) और नंदी की सवारी गाड़ी (बुलोककार्ट-Bullockcart)वगैरह इस्तेमाल करने की ताकत होती है; अगर ऐसा नहीं है, तो हमेशा इस बात का खतरा बना रहता है कि दूसरे हम पर दबदबा बना सकते हैं। अगर हम अपनी मर्ज़ी से इस्तेमाल करने के लिए सांडों और भैंसों को बधिया (castrate) कर देते, तो यह बात साफ़ हो जाती कि हमने उनकी ताकत,

स्टैमिना/सहनशक्ति और उनके साथ घुलने-मिलने की अच्छी भावना खो दी है। समाज के समझदार लोग यह अच्छी तरह समझते हैं कि जन्म से ट्रांसजेंडर होने और बधिया करने की प्रक्रिया से ट्रांसजेंडर बनाए गए व्यक्ति (पुरुष या महिला) के बीच बहुत बड़ा फ़र्क होता है। हैरानी की बात है कि इतिहासकार, मानवविज्ञानी और समाजशास्त्री बताते हैं कि जब से इंसानों ने सांडों, भैंसों, बकरियों वगैरह को बधिया करना शुरू किया, तब से समाज में ट्रांसजेंडरों की संख्या बढ़ गई है।

इसके अलावा, जब खेत में सांप होते हैं, तो हमारे पास खेत को कीड़े-मकोड़ों और कीटों से मुक्त रखने की क्षमता होती है; अगर ऐसा न हो, तो हमेशा यह खतरा बना रहता है कि हमारी फसलें या फल कीड़े-मकोड़ों और कीटों द्वारा खा लिए जाएंगे या नष्ट हो जाएंगे। यह बात सीधी-सी है: अगर खेत में सांप हों, तो ज़हर एक जगह केंद्रित रहता है, और अगर न हों, तो वह फैल जाता है और हर चीज़ को ज़हरीला बना देता है–यहाँ तक कि इंसानों के दिमाग को भी। जब इंसानों का मन ज़हरीला हो जाता है, तो उससे हर तरह की नकारात्मक चीज़ें निकल सकती हैं–जैसे अशांति से लेकर बीमारियाँ, अव्यवस्था से लेकर असंतुलन, और यहाँ तक कि तबाही से लेकर धीरे-धीरे होने वाली मौत तक। इससे व्यक्तियों, परिवारों और समाजों की एक बेतरतीब और बेमेल तस्वीर उभरती हुई दिखाई देती है।

यह सब इसलिए होता है क्योंकि जब हमारा मन भटक जाता है या उसमें ज़हर भर जाता है, तो हमसे ज़िम्मेदारी वाला बर्ताव खत्म होने लगता है, यानी हम गैर-ज़िम्मेदार हो जाते हैं। कोई भी गैर-ज़िम्मेदार इंसान, चाहे वह इंसान हो, परिवार हो, समाज हो या देश हो, आज़ादी नहीं रख सकता और उसे खानाबदोश या गुलाम बनना पड़ता है, जो इस आज़ादी को छीनने वालों के बनाए हर कानून के आगे झुक जाता है, भले ही नियम मनमौजी और मनगढ़ंत क्यों न हों। (एक विदेशी शासक के मनमौजी हुक्म का ऐसा ही एक उदाहरण नील की खेती थी, जो इतनी सख्त थी कि किसानों ने खेती छोड़नी शुरू कर दी और मरना पसंद किया। कहा जाता है कि चंपारण में मिस्टर एम. के. गांधी ने किसानों और अंग्रेजों के बीच कोई समझौता करवाने की बहुत कोशिश की ताकि किसान खेती न छोड़ें। हालांकि मिस्टर गांधी के इस काम ने उन्हें नेशनल हीरो बना दिया, लेकिन किसानों की लूट जारी रही, हालांकि शुरुआती दौर में थोड़ी कम, जो पूरी तरह से अकाल जैसी हो गई, जिससे भारत के बिहार और बंगाल जैसे सबसे ज़्यादा रिसोर्स वाले इलाके में किसानों समेत करोड़ों लोग मारे गए)।

इसके अलावा, किसी को नपुंसक बनाना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। इसकी सज़ा ज़रूर मिलती है - भले ही चुपके से, लेकिन बहुत कड़ी। इसी तरह, जिन पालतू जानवरों का दूध पिया हो,

उनका मांस खाने पर भी सज़ा ज़रूर मिलती है - चुपके से, कड़ी और लंबे समय तक। हालाँकि हम सभी इस अपराध में शामिल हैं, लेकिन उन इलाकों और धार्मिक समुदायों को ज़्यादा भयानक सज़ा मिलती है जो खेती की ज़मीन और पालतू जानवरों को सिर्फ़ एक चीज़ समझते हैं और गोमांस खाते हैं। इसका अंदाज़ा वहाँ बदहाल हालत में भटकते पुरुषों और असमानता का शिकार महिलाओं - खासकर उनके इलाकों और धर्म के वेश्यालयों में रहने वाली महिलाओं - की संख्या से लगाया जा सकता है।

कहा जाता है कि जो भूमिका जंगल में हाथी, शेर, बाघ और तेंदुए निभाते हैं, वही भूमिका मैदानी इलाकों में भैंस, नंदी, घोड़े और लंगूर निभाते हैं। शेरों और बाघों को मारने से जंगलों को जो नुकसान पहुँचा है, वैसा ही नुकसान मैदानी इलाकों में नंदी, भैंसों और घोड़ों को मारने और उन्हें नपुंसक बनाने से हुआ है। हाथियों, शेरों, बाघों और तेंदुओं को मारने से जंगल खत्म हो गए हैं, जबकि मैदानी इलाकों में जानवरों को मारने और नपुंसक बनाने से सिर्फ़ खेती ही नहीं, बल्कि पूरी कृषि-संस्कृति ही नष्ट हो गई है। इन कामों ने असल में सब कुछ पूरी तरह से खत्म कर दिया है। इसे गंगा, कृष्णा, कावेरी और दूसरी नदियों के बेसिन (जैसे पंजाब, बिहार, बंगाल, पाकिस्तान का ज़्यादातर हिस्सा और लैटिन अमेरिका, अफ्रीका आदि के देश) की सबसे उपजाऊ ज़मीन पर भी रेगिस्तान में रहने वाली भेड़ों और ऊंटों को आज़ादी से घूमते और आसानी से रहते हुए देखकर समझा जा सकता है।

इसके अलावा, जब हमने खेतों में पेट्रोल या बिजली से चलने वाली मशीनों का इस्तेमाल शुरू किया, तो खेत और दूसरे जीवित प्राणियों के साथ हमारा निजी जुड़ाव खत्म हो गया। एक तरह से हमने अपनी खेती-बाड़ी की संस्कृति खो दी और व्यापारियों तथा सरकारी कर्मचारियों को 'फार्म', 'फार्मिंग' और 'किसान' जैसे शब्दों का इस्तेमाल करके हमारा और हमारे मुख्य काम का फायदा उठाने या गलत इस्तेमाल करने का मौका दे दिया। (इसका एक उदाहरण भारत के पंजाब जैसे इलाके में भूजल सिंचाई के ज़रिए साल में दो-तीन बार धान की फसल उगाना हो सकता है)।

क्या हुआ या क्या साज़िश रची गई, यह बहस का विषय हो सकता है, लेकिन सच यह है कि खेती-बाड़ी के सेक्टर को मदद मिलने के बावजूद, किसानों की हालत साल-दर-साल खराब होती गई है - न सिर्फ़ औपनिवेशिक शासन और गुलामी के दौर में, बल्कि भारत जैसे आज़ाद और स्वतंत्र देश में भी। अगस्त 1947 (आज़ादी के दिन) से लेकर मार्च 2025 तक गेहूं, चावल, दालों और चीनी की बिक्री की कीमतों और सहायक, प्रशासनिक प्रभारी, सरकारी विभाग में इंजीनियर, डॉक्टर आदि की सैलरी की तुलना करने पर सामाजिक और आर्थिक अंतर साफ़ दिखता है; इन

सभी की सैलरी भारत सरकार तय और नियंत्रित करती है। इस अंतर में यह भी देखा जा सकता है कि 1991 में देश की अर्थव्यवस्था खुलने के बाद सरकारी कर्मचारियों और सांसदों की सैलरी में काफ़ी अंतर आया है।

भारत में देखा जा रहा है कि सत्ता में हो या विपक्ष में, हर राजनीतिक पार्टी और हर सरकार ने किसानों के प्रति पूरी चिंता दिखाई है (सिवाय कुछ के, जिन्होंने किसानों की मदद के नाम पर ट्रैक्टर और खेती के नए उपकरणों की खरीद पर छूट दी)। लेकिन सच्चाई यह है कि कई राज्यों और पूरे देश में किसानों के कर्ज़ माफ़ किए जाने के बावजूद–जिनकी कुल रकम कई लाख करोड़ रुपये थी–किसानों ने आत्महत्या तक का रास्ता अपनाया।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश की मौजूदा स्थिति यह है कि यहाँ की साठ प्रतिशत आबादी (140 करोड़ में से 80 करोड़) गरीब है और उसे हर महीने लगभग एक हज़ार रुपये का मुफ़्त राशन पाने लायक माना जाता है, और लगभग नौ करोड़ किसान इतने गरीब हैं कि उन्हें सालाना छह हज़ार रुपये का मानदेय मिलता है। ऐसी स्थिति को कैसे समझा जाए–इसे मज़बूती माना जाए, सहानुभूति की बात माना जाए या फिर दयनीय स्थिति?

अगर तथाकथित विकसित देशों और भारत की अलग-अलग राजनीतिक पार्टियों के घोषणा-पत्रों को देखा जाए, और साथ ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र और भारत में नीति-आयोग की रिपोर्टों पर नज़र डाली जाए, तो निराशा के अलावा शायद ही कुछ हाथ लगता है; क्योंकि इनमें ऐसी कोई बात मुश्किल से ही मिलती है जो किसानों और गरीबों की लगातार बढ़ती परेशानियों से राहत दिलाने की थोड़ी-बहुत भी उम्मीद जगाती हो।

भारत जैसे देश में यह समस्या और भी गंभीर है; एक तरफ तो सरकार कहती है कि व्यापार, करना उसका काम नहीं है, और दूसरी तरफ भारत सरकार ही देश और विदेश में सभी तरह के अनाज, दालों और खाने के तेल की सबसे बड़ी खरीदार, आयातक और विक्रेता है। लेकिन सबसे बड़ी अजीब बात यह है कि सरकार अपनी तय की हुई कीमतों पर ही इन्हें खरीदती है (चाहे लागत और मेहनत कुछ भी रही हो), और इस बुनियादी बात को भूल जाती है कि अगर सरकार व्यापार करने लगे, तो जनता का हाल भिखारी जैसा हो जाता है- सत्ता व्यापारी तो प्रजा भिखारी।

ज़्यादातर लोकतंत्रों में लोग इसलिए गरीब हैं क्योंकि आम जनता को उनके प्रोडक्ट्स और सर्विसेज़ के लिए बहुत कम पैसे मिलते हैं। इसके पीछे यह सोच काम करती है कि रोज़मर्रा की ज़रूरी चीज़ें और सेवाएँ सस्ती और किफायती होनी चाहिए। इसी सोच ने उन लोगों को गरीब बना दिया है जो ये चीज़ें बनाते हैं और सेवाएँ देते हैं। दुर्भाग्य से, भारत और दूसरी जगहों पर सत्तर प्रतिशत आबादी इसी तरह के कामों में लगी हुई है, इसलिए हमारी सत्तर प्रतिशत आबादी गरीब है।

देश सारा दोष किस पर डाल सकता है:-

स्वयं पर, सरकार पर, सरकार की जो न्यायपालिका है, प्रशाशनिक व्यवस्था है पर, देश को यानि हमें सामूहिक रूप से आज़ादी से पहले के खुमारी (हैंगओवर) से बाहर आने और हमें अपने और अपने देश के भरोसे के भुगतान प्राप्त संरक्षक के तौर पर खुद को जोड़ने की ज़रूरत है।

2. समाधान का खाका (मॉडल)

(i). खेती-बाड़ी की संस्कृति को अपनाना, सबके स्वस्थ, खुश और पवित्र रहने की प्रार्थना करना, और यह भावना पैदा करना कि पूरी दुनिया एक है और हर कोई एक-दूसरे का रिश्तेदार है (इंसान, पक्षी, जानवर, मछलियाँ और पेड़-पौधे) - ये सब गहरी खोज (रिसर्च) का नतीजा थे, न कि हमारे पूर्वजों, यानी संतों और ऋषियों का कोई मनगढ़ंत या सनकी विचार।

यह बात बताने के लिए है कि अगर दुनिया का अंत होने वाला है, तो हम सब बर्बाद हो जाएंगे। इसलिए, गलत रास्ते से सही रास्ते पर आना और बेवजह की परेशानियों से उबरना सिर्फ़ किसानों और उनके परिवारों की ही नहीं, बल्कि हम सबकी व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िम्मेदारी है।

यदि हम अपनी सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक और राजनीतिक गतिविधियों के आय/संसाधनों के वितरण और प्रबंधन भाग को देखें तो हम इस बात की सराहना करेंगे कि कृषि-संस्कृति का प्रबंधन राष्ट्रीय सरकार या अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष या संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों की तुलना में स्थानीय समाज/निकाय का अधिक काम और जिम्मेदारियां है, इसलिए कृषि और वानिकी की सभी गतिविधियों को देखना स्थानीय निकाय/समाज या धार्मिक संस्थान का विशेषाधिकार और कर्तव्य है और अन्यों (राष्ट्रीय सरकार और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संसथान) को जरुरी सहयोग और आपदा प्रबंधन जैसे विषयों तक ही खुद को सीमित करना कहा जा सकता है।

(ii). भारत जैसे देशों में अगर हम किसानों की समस्याओं पर नज़र डालें, तो हम समझ पाएंगे कि किसान कई तरह के दबावों से जूझ रहे हैं, इनमें साहूकारों का दबाव, क्रेडिट कार्ड पर ऊंची ब्याज दरें, प्रति व्यक्ति ज़मीन की घटती उपलब्धता और उसकी घटती उपजाऊ क्षमता, और अपनी पूरी उपज को तथाकथित अधिकृत मंडियों में ही बेचने की मजबूरी शामिल है। इसके अलावा, किसानो को मिट्टी की स्थिति की जांच करने वाली सही प्रयोगशालाओं, सही और प्राकृतिक कीटनाशकों व उर्वरकों, उपज बेचने और बीज व खेती के उपकरण वगैरह खरीदने के लिए उन्हें सही स्थानीय सहायता प्रणाली के ना मिल पाने का अभाव भी झेलना पड़ता है।
जब हम परिवार और समाज में काम और आय के सही बंटवारे पर नज़र डालते हैं, तो यह साफ़ हो जाता है कि समाज का यह फ़र्ज़ है कि वह किसानों को ऊपर बताई गई सभी सुविधाएँ दे।

राष्ट्रीय सरकार को अपने कृषि, सार्वजनिक वितरण और वन मंत्रालयों की भूमिका और ज़िम्मेदारियों को सीमित और पुनर्परिभाषित करना होगा। राष्ट्रीय सरकार जल संसाधन और पर्यावरण मंत्रालयों की भी समीक्षा कर सकती है और कृषि व कृषि-विज्ञान से जुड़े अन्य मंत्रालयों की भूमिका और ज़िम्मेदारियों को भी नए सिरे से तय कर सकती है।

(iii). जैसा कि ऊपर बताया गया है, खेती की ज़मीन और पेड़ों के दायरे के बीच का संतुलन काफ़ी कम हो गया है। इससे ज़मीन के नीचे के पानी के प्राकृतिक रूप से फिर से भरने, मिट्टी में नमी, क्षारीयता/अम्लता, उपजाऊपन और पक्षियों व सूक्ष्मजीवों के आश्रय पर बुरा असर पड़ा है। साथ ही, बाढ़ और तेज़ हवाओं को रोकने से मिट्टी के कटाव में जो कमी आती थी, उस पर भी असर पड़ा है। इसलिए, समाज की यह ज़िम्मेदारी है कि वह अलग-अलग तरह के पेड़ लगाने, उनकी सुरक्षा करने और उन्हें बढ़ने व बने रहने देने का ध्यान रखे।

(iv). जैसा कि ऊपर बताया गया है, किसानों की हालत बहुत खराब हो गई है–वे समाज और देश में सबसे ज़्यादा कमाने वाले और कर (टैक्स) देने वालों की श्रेणी से गिरकर कर्ज़ और दूसरों के सहारे जीने वाले बन गए हैं। यानी, किसान एक अभिशप्त जीवन जी रहे हैं। यह उन अत्याचारों का नतीजा है जो उन्होंने नदियों/सांडों , भैंसों और साँपों पर किए हैं, और साथ ही आदिवासियों (जो हमारे मूल निवासी और किसानों के सौतेले भाई जैसे हैं) के साथ किए गए गलत व्यवहार का परिणाम है। यह समाज की ज़िम्मेदारी है कि वह नदियों/सांडों , भैंसों, पक्षियों, जलाशयों, पेड़ों और जंगलों के प्रति सम्मानजनक व्यवहार सुनिश्चित करे, भले ही इससे दूध और डेयरी उत्पादों–और नतीजतन दूध-चीनी वाली चाय और कॉफ़ी–की मात्रा में कमी ही क्यों न आए।

(v). कई देशों ने अलग-अलग तरह के अयस्क/खनिज बेचना बंद कर दिया है, क्योंकि उनका मानना है कि प्रोसेस किए गए अयस्क या धातु को बेचना ज़्यादा फ़ायदेमंद है। इसी तरह, समाज भी गेहूं, चना या चावल को साबुत अनाज के तौर पर बेचने के बजाय उनका हाथ की चक्की से आटा बनाकर बेचने के बारे में सोच सकता है। इसके अलावा, समाज खेती से आये उत्पादों को अलग-अलग रूपों और तरीकों से बेचने पर भी विचार कर सकता है।

(vi) ऐसा कहा जाता है कि सुधार के लिए प्राथमिक है प्रार्थना, क्योंकि हमारा सामूहिक सुधार तभी हो सकता है जब हमारा भोजन बेहतर हो जाए (जैसा भोजन वैसा मूड), पानी नरम हो जाए (जैसा पानी वैसी आवाज) और हवा ताजी और प्रदूषित न हो जाए (जैसी हवा वैसी हमारी निष्पक्ष/दिशा) और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारी कामोत्तेजक ताजी, स्वच्छ और सड़ी-गली हो जाती है (जैसा नशा वैसी स्थिति- जैसा नशा -जैसा नशा वैसी दशा) और महत्वपूर्ण हिस्सा है यह कि ये सभी कृषि से आते हैं, इसलिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारी कृषि संस्कृति को पुनर्स्थापित किया जाए।

***

16- **साफ़-सुथरी और स्वच्छ अर्थव्यवस्था तथा साफ़-सफ़ाई और स्वच्छता का अर्थशास्त्र**किताब 'ऑल्टरनेट इकॉनमी-नेचुरल सिस्टमैटिक इकॉनमी' से:-

<u>साफ़-सुथरी और स्वच्छ अर्थव्यवस्था तथा साफ़-सफ़ाई और स्वच्छता का अर्थशास्त्र</u>

निम्नलिखित प्रस्तुत है, किसी भी अर्थव्यवस्था में स्वच्छता और साफ़-सफ़ाई की बुनियादी ज़रूरत के संबंध में प्रस्तुतीकरण निम्न चार भागों में रखा जा रहा है: (1). बुजुर्गों में बुद्धिमानों के बीच आम चर्चा, (2). समाधान का स्वरूप:-

(1). बुजुर्गों में बुद्धिमानों के बीच आम चर्चा<u>:-</u>

(1.1). जिन लोगों को हम ऊर्जा, मशीनें और यहाँ तक कि भोजन उपलब्ध कराकर मानवता की मदद करने वाला मानते हैं, वे असल में ऐसा करते नहीं दिखते; बल्कि मदद के नाम पर वे न केवल मानवता, बल्कि पूरे पारिस्थितिकी तंत्र (इकोसिस्टम) को नुकसान पहुँचा रहे हैं।

किसान एक ऐसा समुदाय है, किसान के बारे में हमें विस्तार से चर्चा करनी चाहिए, वे गरीब क्यों हैं, जबकि यह आम बात है कि किसान बहुत कड़ी मेहनत करते हैं।

यह किसानों का काम है - एक तरह का पागलपन और शैतान जैसी क्रूरता, जो किसानों को सबसे शापित समुदाय बनाती है और नतीजतन उन्हें गरीबी और बदहाली में धकेल देती है। अगर हम इस मुद्दे को कारण और परिणाम के नज़रिए से देखें, तो किसानों की बदहाली में कुछ भी असामान्य नहीं है।

किसान पेड़ काटते हैं और बड़े पेड़ नहीं उगने देते, जिससे धरती प्यासी हो जाती है, वे नंदी को नपुंसककरके बैल बना देते हैं, किसान गाय का बहुत ही भयानक तरीके से इस्तेमाल करते हैं जैसे गायों में कृतिम गर्भादान - आर्टिफिशियल इनसेमिनेशन करना , मांसपेशियों को आराम देने वाला (ऑक्सीटोसिन) इंजेक्शन लगाना, ताकि आसानी से दूध दुहना आसान हो जाए। किसानो द्वारा की गयी इन सभी प्रक्रियाओं से गाय ज़हरीली हो जाती है, और फिर जब गाय मर जाती है और उसे गिद्धों ने खाया तो गिद्ध मर गए । किसानो की इसी प्रक्रिया के कारण प्रकृति से अधिकांश गिद्ध मारे गए और अब गिद्ध लगभग विलुप्त प्राय पक्षी है- वह गिद्ध जो कुदरती तौर पर सफाई करने वाला पक्षी हैं।

इन्ही तथाकथित महान किसानो ने जब गाय ने दूध देना बंद किया, तो उसे कूड़े के ढेर में कचरा खाने और अपनी मौत मरने या कसाईखानों में जाने के लिए छोड़ दिया, इन किसानों और दूध उगाने वालों को दूध में कास्टिक सोडा मिलाने और किसी न किसी वजह से सब्ज़ियों पर दर्द

निवारक वगैरह छिड़कने में कोई दिक्कत नहीं होती, ऐसे में कसान कैसे अभिशाप से बच सकते है, सोचने वाली बात है ।

हालांकि किसान लोगों के लिए स्नैक्स बनाने में मदद करते हैं, लेकिन उन्हें सभी सांपों (Snacks) को मारने में कोई बुराई नहीं लगती; इस तरह वे ज़हर को सांपों के सिर में सीमित रहने देने के बजाय उसे धरती पर फैलने देते हैं। सांप किसी के दुश्मन नहीं होते; वे हमारे पर्यावरण को बनाए रखने में हमारे बराबर के साथी हैं।

रिसर्च लैब में कीटनाशक और खरपतवार-नाशक बनाने वालों की तरह ही, किसान भी धरती को ज़हरीला बनाने में बराबर के हिस्सेदार हैं। किसानों और समाज के तौर पर हम सभी की नासमझी ही आज की ज़्यादातर समस्याओं की वजह है। इस मामले के अलग-अलग पहलुओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए आप "सत्यमेव जयते S1 | एपिसोड 8 | ज़हरीला खाना | पूरा एपिसोड (हिंदी), 24 जून 2012, https://youtu.be/Fbc5K9EpTQw" देख सकते हैं।

(1.2). यह एक जानी-मानी बात है कि आज़ादी और हर मौके के साथ बहुत सारी ज़िम्मेदारियाँ भी आती हैं, और जो लोग अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाने में नाकाम रहते हैं, वे आज़ादी से वंचित हो जाते हैं और दुखी हो जाते हैं।

यह ध्यान दिया जा सकता है कि खेती के अलावा और कहीं भी इनपुट से कहीं ज़्यादा आउटपुट नहीं मिलता; किसान एक बीज बोते हैं और बदले में सैकड़ों बीज पाते हैं। माना जाता है कि इसी बात ने किसानों को खुशमिजाज़ और आलसी बना दिया है, जिससे वे बड़े परिवार रखने और धूमधाम से त्योहार मनाने में लग जाते हैं। भारत जैसे देशों में बड़ी आबादी, गरीबी, गुलामी और दुर्दशा के मुख्य कारणों में से एक इसे भी माना जा सकता है। जो किसान और एजेंट बुनियादी नैतिक नियमों की अनदेखी करके ज़रूरत से ज़्यादा खेती में शामिल हुए, वे बाढ़, सूखा, मिट्टी का कटाव, गिरता भूजल स्तर, रेगिस्तान में तब्दीली और इनसे जुड़ी सभी समस्याओं के लिए पूरी तरह ज़िम्मेदार हैं; और नतीजतन, कृषि प्रधान देशों की बर्बाद होती अर्थव्यवस्था के लिए भी वे ही ज़िम्मेदार हैं।

(1.3). हमने शायद खाद्य सुरक्षा तो हासिल कर ली है, लेकिन हमारी फलों की टोकरी काफी हद तक खाली हो गई है; हो सकता है कि ऐसा अनाज को ज़्यादा अहमियत देने और फलों पर कम ध्यान देने की वजह से हुआ हो।

सवाल सिर्फ़ कॉन्ट्रैक्ट फ़ार्मिंग और ऑर्गेनिक फ़ार्मिंग का ही नहीं है, बल्कि यह भी है कि कितनी खेती, कहाँ और किस तरह की हो। सवाल यह भी है कि खेती से पैदा होने वाली चीज़ों, जंगल से

मिलने वाले सामान और शारीरिक मेहनत वाली सेवाओं की बिक्री की कीमत कैसे तय की जाए, खासकर जब इसकी तुलना औद्योगिक उत्पादों और वकील, डॉक्टर या कोचिंग जैसी सलाह देने वाली सेवाओं से की जाए। इसके अलावा, लोन, क्रेडिट कार्ड और इंश्योरेंस सुविधाओं, और उनसे जुड़े सर्विस चार्ज और ब्याज दरों का भी सवाल है, जिनसे किसानों और खेती से जुड़े लोगों को बहुत परेशानी और तकलीफ़ हो रही है। ऐसा लगता है कि हम ज़मीनी स्तर से लेकर सबसे ऊँचे स्तर तक सिस्टम को बेधड़क तोड़ रहे हैं?

कोई भी देश खेती के बिना लंबे समय तक नहीं टिक सकता; इसलिए समाज को खेती और जंगल के बीच प्राकृतिक संतुलन बनाने के बारे में सोचना होगा, भले ही इसके लिए हमें मुश्किल कदम उठाने पड़ें या कठिनाइयों का सामना करना पड़े। ऋषि और कृषि का सम्मान तभी तक बना रह सकता है जब तक खेती एक संस्कृति के रूप में बनी रहे, लेकिन जैसे ही यह प्रकृति की लय के मूल सिद्धांतों को भूलकर नंदी/सांड को सिर्फ़ एक 'बैल/ऑक्स' (सिर्फ़ काम करने वाला जानवर) में बदल देती है, तो इसका पतन निश्चित ही होता है।

(1.4). यह साफ़ है कि बिना पके खाने का बचा हुआ हिस्सा गायों के लिए और पके हुए खाने का बचा हुआ हिस्सा कुत्तों, मेंढकों, बत्तखों, मुर्गियों वगैरह के लिए भोजन का काम करता है, बशर्ते यह उन्हें समय पर मिल जाए; वरना अगले दिन यह कचरा बन जाता है। नगर पालिका के घर-घर जाकर कचरा इकट्ठा करने की वजह से डंप यार्ड में जितना कचरा साफ़ करने का दावा किया जाता है, उससे कहीं ज़्यादा कचरा जमा हो जाता है और इस तरह से हम कचरा पैदा करते हैं और समाज में साफ़-सफ़ाई और स्वच्छता से जुड़ी समस्याएँ खड़ी करते हैं। गाँवों में कहा जाता है कि अगर हम समय पर गाय-भैंसों को बिना पका हुआ खाने का कचरा (जैसे सब्ज़ियों के बचे हुए हिस्से) और कुत्तों व गायों को पका हुआ खाने का कचरा खिला दें, तो बायोडिग्रेडेबल कचरा जमा ही नहीं होगा। इसके अलावा, अगर हम प्लास्टिक या थर्मोकोल की चीज़ों की जगह मिट्टी के डिस्पोजेबल कप, पत्तों की तश्तरी और प्लेट, या दोबारा इस्तेमाल होने वाले थर्मस फ्लास्क/धातु की पानी की बोतल का इस्तेमाल करें, तो नॉन-बायोडिग्रेडेबल कचरा भी कम हो जाएगा। लेकिन गाँव में वे उस गंदगी और कचरे से निपटने में खुद को असमर्थ पाते हैं जो ये अख़बार, मीडिया, नैतिकता का उपदेश देने वाले, अनगिनत चुनावी भाषण, धार्मिक जगहों से बजने वाले लाउडस्पीकर और इंटरनेट लगातार फैला रहे हैं और युवाओं के दिमाग को प्रदूषित कर रहे हैं। इसका नतीजा यह है कि लोग बीमार हो रहे हैं और आम समय में भी तेज़ आवाज़ और गुस्से में बात करते हुए देखे जा सकते हैं। गाँव वालों का कहना है कि यह एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर सरकार और समाज को सफाई लाने के लिए ध्यान देना चाहिए।

(1.5). सवाल उठता है कि हम समस्याओं से भागे बिना या डेटा सेंटर्स के नियंत्रण में आए बिना खुशी-खुशी क्यों नहीं रह सकते। समझदार लोग कहते हैं कि यह समय नकारात्मक ताकतों के उजागर होने और उनके खत्म होने का है, साथ ही सही ताकतों के ऊपर उठने का भी; इसलिए ज़्यादा चिंता करने की बात नहीं है। पहुंचें हुए महानुभावों द्वारा कहा जाता है कि पिछले सौ सालों में - खासकर "चाय, कॉफ़ी, पेट्रोलियम उत्पादों और उनसे जुड़े इंजनों, बिजली और उससे जुड़ी मशीनों" के आविष्कार और इस्तेमाल के बाद - हमारी आदतें बहुत ज़्यादा बदल गई हैं। यही एक मुख्य कारण है जिससे हमारी "पृथ्वी खोखली हो रही है, जंगल खत्म हो रहे हैं, और ज़मीन, हवा व पानी प्रदूषित हो रहे हैं।" कुल मिलाकर, यह एक गंभीर स्थिति है जिसे पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने में असमर्थता के तौर पर देखा जा सकता है। समझदार लोग इसके समाधान खोजने के लिए काफ़ी चर्चा कर रहे हैं और इस विषय पर और व्यापक मंथन करने का सुझाव देते हुए निम्नलिखित बातें भी जोड़ रहे हैं:

(i). पूर्णता (perfection) **को और बेहतर बनाने की ज़रा भी गुंजाइश नहीं हो सकती** (**अगर चीज़ों को बेहतर बनाया जा सकता है, तो वे पूर्ण नहीं होंगी**)**। कहा जाता है कि एक बार जो पूर्णता हासिल हो जाती है, वह हर समय, स्थान और ऊर्जा में वैसी ही बनी रहती है; यानी पूर्णता से बेहतर कुछ नहीं हो सकता** (**उदाहरण के लिए - अगर कोई परमाणु स्तर तक पहुँचता है और पता लगाता है कि पानी के अणु में हाइड्रोजन के दो भाग और ऑक्सीजन का एक भाग** (H2O) **होता है, तो यह तथ्य हमेशा वैसा ही रहेगा। पानी के बारे में मिली यह जानकारी या ज्ञान समुद्र में हो, पहाड़ पर, ज़मीन के नीचे या ऊपर, या किसी भी समय–आज, कल या हज़ारों साल बाद–एक जैसा ही रहेगा। अगर पानी की इस पूर्णता को बेहतर बनाने की कोशिश की जाए, तो शायद यह** H2O2 **या** H2O3 **वगैरह बन जाए, लेकिन यह पीने और जीवित प्राणियों के रोज़मर्रा के इस्तेमाल के लायक नहीं रहेगा** (**भले ही पानी के आणविक ढांचे में सुधार के लिए कड़ी मेहनत और अतिरिक्त प्रयास किए जाएं**)**।**

अगर कोई कहता है कि एकदम सही चीज़ों या लोगों में भी सुधार की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है, तो वे या तो भ्रम में जी रहे हैं या फिर किसी भ्रष्ट दुनिया का हिस्सा हैं। साथ ही, उनका(महात्माओं का) यह भी कहना है कि अगर कोई व्यक्ति, समूह या देश खुद को उस परफ़ेक्शन (पूर्णता) के स्तर पर पहुँच कर उसे बनाए रखने की कोशिश नहीं करता, तो उसका पतन निश्चित है–चाहे वह ऊपर से नीचे गिरे या बिल्कुल तल तक या फिर गहरी खाई में ही क्यों न जा गिरे। आध्यात्मिक दुनिया के लोग कहते हैं कि भारत और दूसरे देशों के साथ भी ऐसा ही है। एक बार जब कोई ऊपर से नीचे गिर जाता है या फिसल जाता है, तो यह साफ़ है कि वापस ऊपर पहुँचने के लिए बहुत ज़्यादा ऊर्जा, समय, सब्र और लगन की ज़रूरत होती है (कहा जाता है कि ऊपर उठने की तुलना में नीचे गिरना हमेशा आसान होता है)।

हो सकता है कि जो लोग पतन का शिकार हुए, उनमें से कुछ सब कुछ खो दें और अपनी तरक्की का सफ़र बिल्कुल शुरू से शुरू करें; वहीं कुछ लोग शायद पुरानी सभ्यता की कुछ निशानियाँ ढूँढ़ पाएँ और याददाश्त के आधार पर अपना सफ़र फिर से शुरू कर सकें। समझदार लोग कहते हैं कि भले ही ये बड़ी घटनाएँ हों, लेकिन दुनिया ऐसे ही चलती है और यह चक्र दोहराता रहता है।

(ii). कहा जाता है कि:

"हिंदी-हिंदू और हिंदुस्तान" शब्द, संस्कृत -"सनातन (धर्म) और संसार (भारत)" शब्दों का अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ रूप) हैं। इस अपभ्रंश रूप ने मानवता के लिए समाधान से ज़्यादा समस्याएँ पैदा की हैं। संस्कृत, सनातन धर्म और संस्कृति के इस बिगड़े हुए रूप के कारण लगभग सभी वर्गों में ज़िम्मेदारी की भावना खत्म हो गई है, नतीजतन, हम सभी अपने अधिकारों से वंचित हो गए हैं और नैतिकता, शिष्टाचार तथा स्वच्छता व साफ़-सफ़ाई के स्तर में लगातार गिरावट को बेबस होकर देख रहे हैं। वह धर्म जो दुनिया को एक परिवार की तरह एकता के नज़रिए से देखता था, जहाँ हर सदस्य घर में अपना योगदान देता था और अपनी ज़रूरत के हिसाब से चीज़ें पाता था, वह अब व्यक्तिवाद में बँट गया है; यानी 'सबके भले' (यूनिवर्सैलिटी) की सोच अब 'सिर्फ़ अपने' (इंडिविजुअलिटी) तक सिमट गई है। यही एक मुख्य कारण है कि हम पाखंडी हो गए हैं और न सिर्फ़ घर या कूड़े के ढेरों पर, बल्कि अपने शरीर और मन में भी गंदगी जमा करते रहते हैं। शायद अब हम उठकर खड़े हो और फिर से सफ़ाई करना और सफाई रखना शुरू करें।

(2), समाधान का स्वरूप

हम अपनी साफ़-सफ़ाई और स्वच्छता को बेहतर बनाने के लिए निम्नलिखित चीज़ें शुरू कर सकते हैं:

दिन में कम से कम दो बार बिना पके और पके हुए खाने का कचरा इकट्ठा करने से कचरे की समस्या काफी हद तक हल हो जाएगी। साथ ही, इससे गायों के लिए चारे और पक्षियों, मछलियों व अन्य पालतू जानवरों के लिए अतिरिक्त भोजन की ज़रूरत भी कम होगी।

सुबह और शाम/रात के खाने के बाद, खाना पकाने से पहले और पके हुए खाने के कचरे को इकट्ठा करने की इस गतिविधि से नीचे दिए गए मोटे अनुमान के अनुसार पर्याप्त रोज़गार भी पैदा होगा:

यह नियम कस्बों, शहरों और मेट्रो इलाकों में लागू होता है, यानी जहाँ नगरपालिकाएँ हैं। भारत में ऐसी आबादी लगभग 40% **है, यानी** 52 **करोड़। अगर एक घर में चार लोग रहते हैं, तो कुल घरों की संख्या जहाँ से खाने का कचरा इकट्ठा करना होगा, वह** 13 **करोड़ होगी। आम तौर पर,**

एक व्यक्ति चार-चार घंटे की दो शिफ्ट में काम करते हुए 100 **घरों से खाने का कचरा इकट्ठा कर सकता है**; **इस हिसाब से खाने का कचरा इकट्ठा करने के लिए** 13 **लाख लोगों की ज़रूरत होगी**, **यानी इतने लोगों को सीधे रोज़गार मिलेगा।**

नए रोज़गार की कुल संख्या = 13 लाख (वे लोग जो पहले से ही खाने-पीने के कचरे को इकट्ठा करने का काम कर रहे हैं)

हर कर्मचारी का मेहनताना: कचरा इकट्ठा करने, उसे अलग-अलग करने, डंप करने और ठिकाने लगाने की मौजूदा लागत + जानवरों के चारे पर होने वाले खर्च में बचत ÷ कर्मचारियों की संख्या।

***

17- गोमांस की उग्र अर्थव्यवस्था और गायों तथा बधिया बैलों की अर्थव्यवस्था:-

पर निम्नलिखित प्रस्तुत है, जिसमें शामिल हैं: (1). बीफ़/गोमांस पर एक काल्पनिक चर्चा (2). गौवंश सुरक्षा पर ग्रामीण परिवेश की कहानियां और विशेषज्ञों के बीच समाधान-केंद्रित चर्चा:

(1). बीफ़/गोमांस पर एक काल्पनिक चर्चा:

गोमांस खाने वाले देशों की खाद्य सुरक्षा परिषद द्वारा की गई काल्पनिक चर्चा निम्नलिखित है:

सदस्य-(सवाल/प्रश्न): हम बीफ़ की लगातार सप्लाई के बारे में कैसे निश्चिंत हो सकते हैं, क्योंकि हमारे यहाँ की जलवायु के कारण हम खुद इसका उत्पादन नहीं करते और गाय पालना भी मुश्किल काम है?

चीफ़ (जवाब/उत्तर): हम इसे भारतीय उपमहाद्वीप, लैटिन अमेरिका और अफ़्रीकी देशों से आयात करते हैं और चिंता करने की कोई बात नहीं है, बल्कि वे इसे बड़ी मात्रा में निर्यात करना पसंद करते हैं।

सवाल: यह तो ठीक है, लेकिन कोई नहीं जानता कि अगर गायों की सप्लाई कम हो गई तो क्या होगा। इससे बीफ़ का उत्पादन कम हो जाएगा, जिससे एक तरफ़ तो कीमतें बढ़ेंगी और दूसरी तरफ़ हमारे देश में बीफ़ की मांग बढ़ सकती है। क्या हमने इस दिशा में कोई कदम उठाया है?

उत्तर: हालाँकि हम यहाँ सादी चाय और कॉफ़ी लेते हैं, हमने उन देशों में दूध और चीनी के मिश्रण को बढ़ावा दिया है। भारत जैसे देशों में, साधारण चाय और कॉफ़ी का मतलब है चाय की पत्तियां/दाने, पानी, दूध और चीनी वाली चाय; और स्पेशल चाय का मतलब है उसमें इलायची, अदरक, तुलसी वगैरह मिलाना। इसी वजह से दूध की भारी मांग बनी रहेगी, जिसका मतलब है कि बड़ी संख्या में गाय, भैंस, बकरी वगैरह की ज़रूरत होगी।

जब गायों/भैंसों से दूध निकलने की मात्रा काम हो जाती है या इनसे दूध निकलन बंद हो जाता है तब इन पालतू जानवरों को हटा दिया जाता है (रिटायर होना पड़ता है); हमारे लिए बीफ़ की ज़रूरत पूरी करने के लिए ये हटा दी गयी (रिटायर हो चुकी) गायें और भैंसें ही काफ़ी हैं।

इसके अलावा हमें गोमांस की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए हम यह सुनिश्चित करते हैं कि इन देशों में केवल दूध वाली चाय और कॉफी का विज्ञापन किया जाए, फिर हम डेयरी उद्योग,

चीनी उद्योग, चाय और कॉफी बागानों को बढ़ावा देने के लिए आसान ऋण प्रदान करते हैं, फिर हम इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि चीनी और डेयरी उत्पाद पर सब्सिडी कैसे आवश्यक है, ताकि ये उत्पाद इन देशों के आम लोगों के लिए किफायती बने रहें। फिर गायों के लिए चारा और घास सुनिश्चित करने के लिए हम कृषि को बढ़ावा देते हैं, और हम यह सुनिश्चित करते हैं कि कृषि और घास के मैदान के लिए भूमि बढ़ाने के लिए जब जंगल काटे जाते हैं या जंगलों में आग लगती है और वे राख हो जाते हैं तो कोई भी ज्यादा शोर नहीं मचाये।

सवाल: अगर ऐसा है, तो हम सिर्फ़ बीफ़ खाने के लिए इतना पैसा लगा रहे हैं? क्या हम इस पैसे को दोबारा गिनने के लिए कुछ करते हैं ?

जवाब: हाँ! यह आम बात है कि अगर कोई लगातार दूध और चीनी वाली चाय और कॉफ़ी पीता है, तो उसे निश्चित रूप से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं होंगी। ये समस्याएं मुंह की साफ़-सफ़ाई और पाचन तंत्र के बिगड़ने से शुरू होती हैं। शरीर में सभी बीमारियां इन्हीं दो जगहों से शुरू होती हैं। इसलिए, यह तय है कि दूध और चीनी वाली चाय और कॉफ़ी पीने वाले लगभग सभी लोगों को स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं होंगी और उन्हें डॉक्टरों के पास जाना पड़ेगा और दवाएं खरीदनी पड़ेंगी। हमने दवा बनाने वाली कंपनियों और अस्पतालों की श्रृंखला में बड़ी हिस्सेदारी हासिल कर ली है। इससे हमें बहुत ज़्यादा मुनाफ़ा होता है, जो उन देशों में डेयरी और चीनी के कारोबार को बढ़ावा देने में हमारे निवेश से कहीं ज़्यादा है।

इसके अलावा, हमने मीडिया (अखबारों, न्यूज़ चैनलों और सोशल साइट्स में काफी हिस्सेदारी) में भी काफी निवेश किया है, ताकि यह पक्का किया जा सके कि वे हमारी आवाज़ और भावनाओं को ही आगे बढ़ाएं (न कि किसी और की)। इससे हम उन देशों में इतने ताकतवर हो गए हैं कि हम अपनी शर्तें मनवाने की स्थिति में बने रह सकते हैं और साथ ही इन निवेशों से अपना मुनाफ़ा भी कमा सकते हैं।

सवाल: सुना है कि कुछ लोग गाय को माता मानते हैं, उन्हें किस तरह संबोधित किया जाता (संभाला जाता) है?

जवाब: हमने 'मदर डेयरी' के विचार को बढ़ावा दिया है और यह प्रचारित किया है कि रोज़ाना कम से कम एक गिलास दूध पीना कितना फ़ायदेमंद है। हम अपने बुद्धिजीवियों के ज़रिए लोगों को उनके ही धर्मग्रंथों और लेखों के जाल में उलझाकर रखते हैं ताकि वे अंधे, दब्बू और डरपोक बने रहें–जैसे दूध को 'अमृत' या 'सुधा' कहा गया, तो 'सुधा डेयरी' बनी; दूध को 'अमूल्य' कहा गया, तो 'अमूल डेयरी' और 'अमूल मिल्क - द टेस्ट ऑफ़ इंडिया' बना। इस तरह वे संतुष्ट और सीमित दायरे में ही बंधे रहते हैं।

आपको हैरानी होगी कि ऐसे कई तथाकथित ज्ञानी वक्ता हैं जो गाय को 'माता' तो कहते हैं, लेकिन अपने प्रवचनों या अन्य मौकों पर दूध और चीनी वाली चाय-कॉफ़ी परोसे जाने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती; बल्कि वे खुद भी इसे पीने में कोई बुराई नहीं समझते।

इनमें से कुछ लोगों ने चाय के बुरे असर का ज़िक्र तो किया, लेकिन बदले में उन्होंने खुद दूध और चीनी के बारे में कुछ भी कहे बिना आयुर्वेदिक चाय प्रस्तुत कर दी ।

इसके अलावा, ये उपदेशक हमारे देशों में आकर और बीफ़ खाने वाले समुदायों के बीच भी अपना ज्ञान (जिसे वे बुद्धिमानी कहते हैं) बांटकर खुश होते हैं; ऐसा लगता है कि हमसे मिलने वाले चढ़ावे से वे अंधे हो जाते हैं।

फिर ज़्यादातर पुरुष और महिलाएँ अपनी ज़िंदगी के खालीपन को भरने के लिए चाय और कॉफ़ी का सहारा लेते हैं।

जब घर पर धर्म के उपदेशक और औरतें, कर्मचारी और अधिकारी, मानने वाले और नेता 'गाय हमारी माता है' के नारे लगाते हुए चीनी और दूध वाली चाय और कॉफी बनाने, पीने और परोसने में लगे हों, तो न सिर्फ़ बीफ़ बल्कि कई दूसरी चीज़ों और सेवाओं की लगातार सप्लाई का भरोसा किया जा सकता है। इसके अलावा, उन्होंने स्वागत पेय के तौर पर दूध और चीनी मिली चाय और कॉफी देने का रिवाज बना लिया है, इसलिए हमें इन पाखंडियों से किसी भी चीज़ की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है।

सवाल: इसका मतलब है कि हम बीफ़ की सप्लाई बनाए रखते हुए कमाई भी कर रहे हैं; क्या यह हमारी समझदारी और उनकी सरासर बेवकूफी जैसा नहीं लगता?

जवाब: हा हा,

सवाल: क्या होगा अगर उन्हें यह बात समझ आ जाए?

जवाब: ऐसा नहीं है कि किसी को इसका एहसास नहीं है, लेकिन ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। जब भी वे आवाज़ उठाते हैं, तो उन्हें अक्सर दबा दिया जाता है–खासकर उन लोगों द्वारा जो दूध-चीनी वाली चाय और कॉफ़ी के आदी हैं, या फिर उन लोंगो द्वारा जो डेयरी, अस्पतालों और दवा कंपनियों से फ़ायदा कमाते हैं।

इसे बस यूं ही हटाया नहीं जा सकता; इससे इन देशों में अंदरूनी जंग छिड़ सकती है, जिससे वहां के नेता हर हाल में बचना चाहेंगे। और अगर वे (इन देशों के नेता) नाकाम रहते हैं, तो हमें इन देशों के अंदरूनी मामलों में दखल देने में महारत हासिल है। दूसरों को बुरा-भला कहना, उन्हें

लड़ाई-झगड़े या जंग के लिए उकसाना हमारे लिए एक खेल जैसा है, जिसे इनमें से कई नेता जानते हैं और इसीलिए वे हमसे डरते हैं।

इसके अलावा, दूध और चीनी वाली चाय और कॉफ़ी की लत छोड़ने में कम से कम एक महीना लगता है, और पूरे समुदाय और देश के लिए इसमें शामिल होना और इसे अपनाना मुश्किल है।

सवाल: क्या आप अपने बड़े दावे का कोई उदाहरण दे सकते हैं?

जवाब: हाँ, **वह निम्न हैं**:

(i) उदाहरण के लिए, राजनीतिक दायरे में यह धारणा प्रसारित की गई कि गाय का वध मुसलमान ही कर रहे हैं, और मुसलमानों के बीच यह धारणा फैल गई कि ऐसा करना उनका मौलिक अधिकार है, और इस प्रकार गोमांस पर एक वर्ग विभाजित हो गया, जबकि तथ्य यह है कि गोमांस की आपूर्ति करने वाले अधिकांश स्वचालित बूचड़खाने गैर-मुस्लिम समुदाय द्वारा संचालित और स्वामित्व में हैं (जिसमें वह समुदाय भी शामिल है जो हर मानदंड और हर रूप में अहिंसा के लिए पूरी आवाज/शोर मचाता है)।

(ii). भारत के सुप्रीम कोर्ट ने 1998 से 2005 तक चली लंबी सुनवाई के बाद 2005 में गाय की सुरक्षा के लिए एक फ़ैसला सुनाया, लेकिन सरकार में किसी ने भी उस पर ध्यान नहीं दिया।

(iii). बैन करने वाला बिल पार्लियामेंट में तीन बार लाया गया है, लेकिन

(iii.i). एक बार सरकार ने साल 2001 के आस-पास सुबह बिल पेश किया, लेकिन शाम को यह कहकर वापस ले लिया कि इस पर बाद में चर्चा की जाएगी,

(iii.ii). एक और घटना में, बीफ़ पर रोक लगाने वाला बिल पास होने ही वाला था कि तभी एक महिला सांसद (जो हिंदू समुदाय से होने का दावा करती हैं) ने कहा कि मैं बीफ़ खाती हूँ, इसलिए अगर यह बिल पास हो जाता है तो अपनी पसंद का खाना खाने के मेरे मौलिक अधिकार का क्या होगा? इसके बाद वह बिल रद्द कर दिया गया।

(iii.iii) तीसरी बार जब बिल पेश किया गया, तो कोलकाता के हिंदू समुदाय के एक जाने-माने पत्रकार (जिन्होंने कभी भारत के राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ा था) ने लिखा कि वे बीफ़ खाते हैं और उनके और उन जैसे लोगों का क्या होगा - फ़िल्म इंडस्ट्री की कुछ हस्तियों (जो सभी हिंदू थे) ने इस बयान का समर्थन किया और बिल फिर से रोक दिया गया। तब से, कुछ आवाज़ें तो सुनाई देती हैं, लेकिन ऐसा कुछ ठोस नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि संसद में बीफ़ पर प्रतिबंध लगाने वाला बिल पेश किया जाएगा।

(iv). स्पेन में बुल-फाइटिंग (सांडो की कुस्ती) के पूरे आयोजन होते हैं, लेकिन भारत के तमिलनाडु में मीडिया ने इसका विरोध किया है।

(v). हम गाय की महिमा का तो प्रचार करते हैं, लेकिन सांड के बारे में चुप रहते हैं; कोई भी गाय-सांड और भैंस-पाड़े की बढ़ती आबादी के अंतर, गाय और भैंस के नर बच्चों को कम उम्र में खाना न देकर मारने, कम उम्र में ही सांड और पाड़े को बधिया करने, आसानी से दूध निकालने के लिए गाय और भैंस को इंजेक्शन लगाने, दूध निकालने के लिए मशीनों के इस्तेमाल और गाय-भैंस में कृत्रिम गर्भाधान (artificial insemination) के बारे में बात नहीं ऐसे कई उदाहरण हैं।

सवाल: क्या ऐसा है? ये किस तरह के लोग हैं?

जवाब: आप खुद ही कोई नतीजा निकाल सकते हैं–चाहे उन्हें पाखंडी कहें, या भावनात्मक, नैतिक और चारित्रिक रूप से 'ज़िंदा लाश' समझें, या जो भी चाहें। इन लोगों की हालत तब बिगड़ने लगी जब उन्होंने ज़्यादातर सांडों को बधिया (नपुंसक) करना शुरू कर दिया, जिससे वंश आगे बढ़ाने के लिए बहुत कम सांड बचे। फिर उन्होंने इन बधिया किए गए सांडों–जिन्हें 'बैल' कहा जाता है–का इस्तेमाल खेती और बैलगाड़ी खींचने में करना शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि इस वर्ग/समाज/समुदाय में नपुंसकता, आपस में ही प्रजनन (इनसेस्ट), निराशा और बेबसी जैसी समस्याएं पैदा हो गईं।

इसके अलावा, जब कुछ धर्मों ने आधिकारिक तौर पर विकल्पहीनता का हवाला देते हुए मांस खाने को स्वीकार कर लिया और उपदेश दिया कि ऐसे शिष्यों को अपने भोजन का चयन करने में कोई विवेक नहीं होना चाहिए, और एक अन्य धर्म ने कहा कि किसी को सीधे हत्या से दूर रहना चाहिए, हालांकि वह हत्या के फल का आनंद ले सकता है (जैसे कृषि बहुत हिंसा का कारण बनती है इसलिए कृषि से दूर रहें लेकिन कोई कृषि का व्यवसाय कर सकता है) इस सोच से इन लोगों ने समूह को कमोबेश उपयोगितावादी बना दिया।

सवाल: दो और सवाल हैं। पहला, हमें जो बीफ़ (गोमांस) मिल रहा है, उसकी गुणवत्ता कैसी है? और दूसरा, क्या हमें उस वातावरणीय गड़बड़ी का असर होता है जो गन्ना, चाय, कॉफ़ी , अदरक, इलायची और घास की खेती के लिए जगह उपलब्ध लड़ने के लिए की गई पेड़ों की बहुत ज़्यादा कटाई से हुयी है?

जवाब: यह निश्चित रूप से चिंता का विषय है, जिसके लिए हमने जलवायु परिवर्तन और उसके बाद की कार्रवाई पर चर्चाको बढ़ावा दिया है। उम्मीद है कि इस प्रक्रिया से कोई समाधान निकलेगा, चिंता न करें।

सवाल: तो, क्या हम बीफ़ की लगातार सप्लाई के बारे में निश्चिंत हो सकते हैं?

जवाब: हाँ, बिल्कुल; जब तक हमारा दबदबा बना हुआ है, तब तक, आगे समय ही मालिक है।

सवाल: एक आखिरी सवाल, हम उन पर कब तक बढ़त बनाए रखेंगे?

जवाब: यह वह सवाल है जिस पर उन्हें ज़्यादा सोचना चाहिए। हम सभी इंसान हैं और शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक ताकत के मामले में हर नस्ल लगभग बराबर है। उनसे आगे होने की वजह हमारी ज़्यादा ताकत नहीं, बल्कि उनकी कमज़ोरी है। यह सीधी सी बात है: अगर कोई सांडों को मारता है, तो उसे भी दबाया जाएगा; अगर कोई बेरहमी से सांडों को बधिया करता है, तो उसके साथ भी बैल जैसा बेरहम बर्ताव होगा, जिससे वह डरपोक बन जाएगा और मुकाबला करने की हालत में नहीं रहेगा। ज़रा उन लोगों की हालत देखिए जो सांड, गाय, भैंस और पाड़ों का इस्तेमाल और बुरा बर्ताव करते हैं–उनकी हालत कितनी दयनीय है। चाहे वे किसान हों, ग्वाले हों या उनके पुजारी, क्या आपको लगता है कि वे कभी अपनी आदतें सुधारेंगे?

एक तरह से, उन्होंने अपने उसी भगवान को नाराज़ कर दिया है जिनकी वे पूजा करते हैं, उनसे हमें आगे होने के बारे में आप इससे ज्यादा और क्या सुनना चाहते हैं।

(2). <u>गौवंश सुरक्षा पर ग्रामीण परिवेश की कहानियां और विशेषज्ञों के बीच समाधान-केंद्रित चर्चा:</u>

(2.A). *आध्यात्मिक हलकों में कहा जाता है कि एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका (मूल निवासी और लैटिन) के लोगों की ऊर्जा तरंगें लगभग एक ही स्तर और एक ही तरंग-दैर्ध्य* (wavelength) *पर, बहुत ही लयबद्ध और सामंजस्यपूर्ण ढंग से स्पंदित होती पाई जाती हैं। वे एक साथ उठते हैं और चोटी को छूते हैं, सदियों तक शांति और तालमेल के साथ वहीं रहते हैं और प्रकृति के चक्र में घटनाओं के बदलने के साथ एक साथ रसातल (सबसे नीचे) में गिर जाते हैं।*

जब ये अपने चरम पर थे, तब इन्होंने बेहतरीन विज्ञान (जैसे कीमियागरी - पारे और दूसरी धातुओं को सोने में बदलना), जीवन विज्ञान, कला, परिवार और समाज का प्रबंधन, काम और धन, प्रशासन और न्याय आदि पर ग्रंथ रचे। साथ ही, सदियों तक आपसी विश्वास और सम्मान के माहौल में रहे–एक ऐसा माहौल जिसकी आज बहुत से लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।
जो लोग इसकी अहमियत समझते हैं, वे जानते हैं कि सभी तरह के कंपन, उनसे पैदा होने वाली लहरें और इन लहरों का उतार-चढ़ाव–सब ईश्वर की मर्जी है, और वे पूरी विनम्रता के साथ बदलावों को स्वीकार करते हैं।

इसके अतिरिक्त ज्ञानीजन निम्न कारणों की ओर इशारा करते हैं जिनकी वजह से लोग बुरी स्थिति में फंस जाते हैं और फिर और नीचे गिरते चले जाते हैं:

(i). *ऐसा इसलिए है क्योंकि भगवान ऐसा ही चाहते हैं, या यह हमारी बदकिस्मती है, या यह हमारे कर्मों का फल है, या फिर सब कुछ एक भ्रम (माया) है।*

(ii). *परिवार के माता-पिता या घर के बुजुर्ग तीर्थयात्रा या संन्यास के लिए चले गए हैं, और चालाक लोग उनकी खाली छोड़ी हुई जगह पर काबिज़ हो गए हैं; वे खुद को शुभचिंतक बताते हैं, जबकि असल में ये ही इन परिवारों या समाज को नीचे गिराते है।*

(iii). *ऐसा तब होता है जब हालात आसान हो जाते हैं और राजा/रानी, राजकुमार/राजकुमारी या राष्ट्रपति/प्रधानमंत्री खुद को काफी काबिल समझने लगते हैं और सादगी व दयालुता के इन गुरुओं/ऋषियों/ज्ञानी पुरुषों को नज़रअंदाज़ करने लगते हैं। ऐसे अनादर भरे माहौल में, गुरु/ऋषि/ज्ञानी पुरुष वह जगह छोड़कर चले जाते हैं। घ) जब माननीय सदस्य और सम्माननीय वरिष्ठजन केंद्र स्थान छोड़ देते हैं तो गति के कारण कुछ समय के लिए चीजें आसानी से चलती हैं लेकिन उस गति के बाद एक छोटा सा मुद्दा भी तूफान बन जाता है और साम्राज्यों के पतन का कारण बनता है।*

(iv). संतों और ऋषियों की अनुपस्थिति में जो चीज़ें बदलती हैं, वे हैं परिवार और समाज में इस्तेमाल होने वाले पेय, भोजन और कामोत्तेजक पदार्थ; ये चीज़ें सब कुछ उलट-पुलट कर देती हैं। यह आम बात है कि समाज में बदलाव लाने के लिए ये चीज़ें (पेय, भोजन और कामोत्तेजक पदार्थ) काफ़ी होती हैं–चाहे वह बदलाव अच्छाई से बुराई की ओर हो, बुराई से और ज़्यादा बुराई की ओर, या फिर राजशाही से गुलामी की ओर (या इसके उलट)।

यह समय के साथ परीक्षित और बिना किसी संदेह के सिद्ध तथ्य है कि पेय पदार्थ (पानी, दूध, फलों का रस, सूप) आवाज को प्रभावित करते हैं, भोजन मूड/दिमाग को प्रभावित करता है और नशा स्थिति/भाग्य तय करता है (जैसा पानी वैसी वाणी, जैसा अन्न वैसा मन, जैसा नशा वैसी दशा: जैसा पानी वैसी वाणी, जैसा अन्न वैसा मन, जैसा पानी- वैसी वाणी, जैसा अन्न वैसा मन, जैसा भोजन- वैसा भजन , जैसा नशा- वैसी दशा स्थिति)।

इसके अलावा, खान-पान का मतलब सिर्फ़ मुँह से ली जाने वाली या इंजेक्शन के ज़रिए दी जाने वाली चीज़ें ही नहीं हैं; इसमें वे चीज़ें भी शामिल हैं जिन्हें लोग आँखों, कानों, नाक और स्पर्श के ज़रिए ग्रहण करते हैं। कहा जाता है कि धन, नाम, शोहरत, सत्ता और यहाँ तक कि ज्ञान का

नशा भी बहुत गहरा और स्थायी होता है, इसलिए इंसानों को बिगाड़ने के लिहाज़ से इन्हे ज़्यादा खतरनाक या ज़हरीला माना जा सकता है।

इसके अलावा, जिस तरह से ये (पेय,खाना और नशीले पदार्थ) प्राप्त किया गए (उगाए गए, इकट्ठा किए गए, प्रोसेस किए गए, भण्डारण किए गए, पकाए गए या रेफ्रिजरेट किए गए), परोसे गए और लिए गए (पीए गए और खाए गए) वे पाने वाले की आवाज़, दिमाग और हालत को बनाते हैं। इस तरह पेय, खाना और नशे की इस पूरी प्रक्रिया का हर पहलू इंसानियत और हमारे पूरे वातावरण एवं वायुमंडल पर असर डालता है।

(v).जब गुरु या बड़ों की अनुपस्थिति में आम लोगों को नशीले पदार्थ खुलेआम दिए जाते हैं, तो वे चालाक और धूर्त लोगों के आसान शिकार बन जाते हैं और ऐसे गंभीर अपराध भी कर सकते हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कहा जाता है कि नशे के असर में लोग जब चालाकी भरी कलाओं और वर्जित विज्ञान के माहिरों के संपर्क में आए, तो उन्होंने अनगिनतअपराध किए-जैसे जानवरों का दूध पूरी तरह निकाल लेना और उनके बछड़ों को भूखा छोड़ देना, या नंदी , भैंसे, बकरे और भेड़ों को बधिया कर देना और उन्हें दोस्त या रिश्तेदार मानने के बजाय उन्हें गुलाम या मशीन की तरह इस्तेमाल करना। दुर्भाग्य से, आज भी ये काम किए जा रहे हैं और वह भी ज्यादा क्रूर तरीके से। इसके बदले में इंसान को इन सभी जानवरों से श्राप मिल रहा है। कहा जा सकता है कि सारा दूध और खेतों की सारी उपज श्रापित हो गयी है। ऐसे श्रापित दूध को पीने और ऐसे श्रापित भोजन को खाने को ही समाज में रहे सभी बुरे कामों की जड़ कहा जा सकता है।

(vi). कहा जाता है कि महर्षि दुर्वासा ही सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने गाय को 'माता' कहा और प्रेम व शक्ति के प्रतीक नंदी के साथ गाय की पूजा की।

दुनिया के हर धर्म में गाय और नंदी से जुड़ाव देखने को मिलता है; कुछ धर्मों में गाय को बलि और शुद्धि की प्रक्रिया का ज़रूरी हिस्सा माना , तो कुछ में गाय और नंदी को पवित्र माना, एक धर्म का मानना है कि आज के ज्ञानी महापुरुषों ने मुक्ति पाने से पहले अपने पिछले जन्मों में गाय का रूप लिया था, इसलिए उनके धर्म में गाय की पूजा की जाती है क्योंकि वह अपने सभी कर्मों से मुक्त हो जाती है। कुछ धार्मिक लोग तो यह भी कहते हैं कि गाय और नंदी अपने मौजूदा जन्म में किसी देवी-देवता के श्राप का जीवन जी रहे हैं। लेकिन एक बात बहुत दुखद है कि इन सभी धर्मों के लोगों ने मिलकर गाय और नंदी के साथ अपराध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, जिसका नतीजा यह हुआ कि न सिर्फ़ पूरी इंसानियत दुखी हुई, बल्कि पूरी धरती और उसके पारिस्थितिकी तंत्र (इकोसिस्टम) पर भी बहुत बुरा असर पड़ा है ।

(vii). कहा जाता है कि इंसानों में ज़्यादा दूध पाने की चाहत ने बच्चों को इतनी कम उम्र से ही इस तरह बिगाड़ दिया है कि बड़े होने पर उन्हें बछड़ों को उनकी माँ का दूध न मिलने देना, बछड़ों को मारना और बधिया करना कोई अपराध ही नहीं लगता।

यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि दूध देने वाले जानवरों के साथ होने वाले इस अपराध से वे लोग भी परेशान नहीं होते, जो 'गौ माता' और शक्तिशाली 'नंदी' की तारीफ़ में नारे लगाते रहते हैं।
अफ़सोस! यहाँ तक कि साधु-साध्वी, तथाकथित सुखी गुरु/सद्-गुरु की पूरी नस्ल ही गाय/भैंस और अन्य जानवरों पर अपराध करके एकत्र किया गया दूध पीकर इस हद तक भ्रष्ट हो गई कि समाज में इनका (इन साधु-साध्वी, तथाकथित सुखी गुरु/सद्-गुरु का) कोई प्रभाव नहीं रह गया।
यह कहा जा सकता है किआज "साधु, साध्वी, स्वामी और संन्यासी जैसे वर्गों को आत्म-शुद्धि, गहरे ध्यान और बड़े यज्ञ (निस्वार्थ सेवा) करने की बेहद जरुरत है, जिसमें इनके द्वारा सभी प्रकार के सुख-सुविधाओं का त्याग भी शामिल हो। यह इनके प्रति लोगों का भरोसा और विश्वास फिर से बहाल करने तथा उन्हें फिर से जन-नेतृत्व करने और गौरव पाने के योग्य बनने की दिशा में एक ज़रूरी पहला कदम कहा जा सकता है।

यह सर्वशक्तिमान से प्रार्थना करता है और सभी को इस प्रार्थना में शामिल होने के लिए प्रेरित करता है, ताकि हमें गाय और नंदी के प्रति और अपराध करने से खुद को रोकने की समझ और संवेदना मिल सके, और सभी जीवित और निर्जीव प्राणियों के प्रति सम्मान बहाल करने की पर्याप्त शक्ति मिल सके। ऐसा इसलिए भी जरुरी है की इसके विणा कोई भी सभ्यता ज्यादा देर टिक नहीं सकती।

भगवान् हमें आशीर्वाद दे,

***

18- कौन हैं नरेंद्र

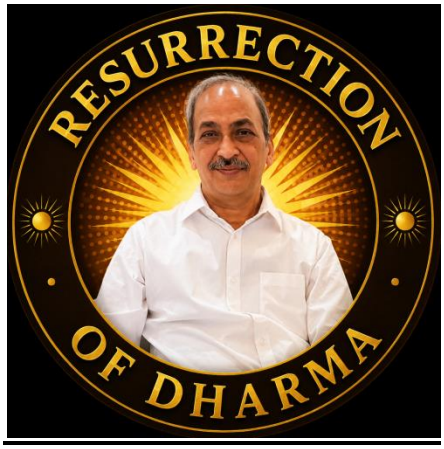

श्री नरेंद्र कुमार अग्रवाल एक भारतीय अभियंता, चिंतक, लेखक एवं सामाजिक संवादकर्ता हैं। उनका जन्म 13 फरवरी 1966 को झाँसी (भारत) में हुआ। उन्होंने भोपाल के एम.ए.सी.टी. (वर्तमान MANIT) से इलेक्ट्रॉनिक्स एवं दूरसंचार अभियंत्रण में स्नातक शिक्षा प्राप्त की तथा भारत की अग्रणी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी NTPC में लगभग 31 वर्षों तक सेवा करते हुए अभियंता प्रशिक्षु से अतिरिक्त महाप्रबंधक (Additional General Manager) तक का दायित्व निभाया।

किन्तु उनका परिचय केवल एक अभियंता का नहीं, बल्कि एक ऐसे चिंतक का है जो पिछले दो दशकों से मानव जीवन, धर्म, शासन व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य, पर्यावरण और विश्व व्यवस्था पर निरंतर अध्ययन, चिंतन एवं संवाद करते रहे हैं।
उन्होंने "Mita-Life Style Agenda", "Divincracy (Divine Democracy)", "सनातनी वैश्विक व्यवस्था" जैसी पुस्तकों की रचना की तथा "Paraanjali" और "Dharayate iti Dharma" जैसी पुस्तकों के मार्गदर्शन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विचार यात्रा: 2003 से प्रारम्भ

वर्ष 2003 से श्री नरेंद्र जी ने भारत एवं विश्व व्यवस्था से जुड़े विषयों पर अध्ययन, चिंतन, लेखन और राष्ट्रीय संवाद प्रारम्भ किया। उन्होंने शासन, धर्म, विज्ञान, अर्थव्यवस्था, कृषि, ऊर्जा, पर्यावरण और मानव जीवन से जुड़े विषयों पर देश के विभिन्न नेताओं, विद्वानों और संस्थाओं से संवाद स्थापित किया।

उनके विचारों को समय-समय पर विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा संज्ञान में लिया गया और उनकी प्राप्ति स्वीकार की गई।

उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार श्रीमती सोनिया गांधी के कार्यालय तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा उनके पत्रों एवं विचारों की प्राप्ति स्वीकार की गई। राष्ट्रपति भवन द्वारा उनकी पुस्तक एवं विचारों के लिए धन्यवाद प्रेषित किया गया। प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा उनकी विभिन्न पुस्तकों की प्राप्ति स्वीकार की गई। पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति जनरल परवेज़ मुशर्रफ ने उनकी पुस्तक "Mita-Life Style Agenda" की प्रशंसा करते हुए इसे मानवता के लिए उपयोगी प्रयास बताया। विभिन्न विद्वानों, शिक्षाविदों तथा संस्थाओं ने भी उनके विचारों को सराहा। इन प्रशंसा-पत्रों एवं अभिलेखों का संकलन उपलब्ध है। Resurrection of dharma website परदेखेजासकतेहैं।

अज्ञातवास एवं चिंतन काल (मार्च 2019 - मार्च 2026)

मार्च 2019 से मार्च 2026 तक श्री नरेंद्र जी एक विस्तृत अज्ञातवास एवं चिंतन काल में रहे। इस दौरान उन्होंने भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा नेपाल के जनकपुर सहित अनेक स्थानों की यात्राएँ कीं, अध्ययन किया, संवाद किया तथा भविष्य की रूपरेखा पर कार्य किया।

यह काल किसी पद, प्रतिष्ठा या संगठन निर्माण का नहीं था, बल्कि आत्ममंथन, शोध, जीवन के गहरे प्रश्नों पर चिंतन और भावी जन-आंदोलनों की तैयारी का काल था। इसके साथ ही उन्होंने भारत तथा भारत के पड़ोसी देशों के विभिन्न मुद्दों पर सरकार को अपनी राय भेजते रहे है

हममें से चार-पाँच साथी इस अज्ञातवास काल के साक्षी रहे हैं। हमने निकट से देखा है कि किस प्रकार वर्षों तक अध्ययन, लेखन, संवाद और मनन के आधार पर विभिन्न विषयों पर व्यापक दृष्टिकोण विकसित किया गया।

❖ ***अब आगे क्या?***

मार्च 2026 में अज्ञातवास से बाहर आने के पश्चात श्री नरेंद्र जी ने समाज के समक्ष एक व्यापक संवाद एवं जन-जागरण यात्रा प्रारम्भ करने का निर्णय लिया है।

यह आंदोलन किसी राजनीतिक दल का निर्माण करने, किसी संवैधानिक पद को प्राप्त करने या किसी धार्मिक संगठन, मिशनरी अथवा कॉर्पोरेट संरचना से जुड़ने का प्रयास नहीं है। इसका उद्देश्य मानव, समाज, प्रकृति और शासन व्यवस्था के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु संवाद, शोध और जन-सहभागिता को बढ़ावा देना है।

प्रस्तावित प्रमुख आंदोलन

1.एक आंदोलन, एक अभियान गौवंश (नन्दी-नंदिनी::गाय-सांड,) की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए [आंदोलन की घोषणा: 30 मई, 2026 को दिल्ली, भारत, लक्षित तिथि: 31.12.2027

2.एक आंदोलन, एक अभियान ताकि सभी काबिल युवाओं को सही नौकरी मिले और देश के सभी नागरिकों (कम से कम भारत में) के साथ-साथ यहां आने वाले आगंतुकों को पूरी सामाजिक सुरक्षा मिले - दिसंबर 2028 से 31 दिसंबर, 2032 के बीच (सारे संदर्भ/उदाहरण भारत के हैं):

समायोजन अवधि:

31 दिसंबर 2027 तक समाज एवं नागरिकों के लिए एक समायोजन एवं जागरूकता काल प्रस्तावित है, ताकि लोग इन विचारों को समझ सकें, चर्चा कर सकें और स्वेच्छा से भागीदारी कर सकें।

हमारा विश्वास

हम मानते हैं कि स्थायी परिवर्तन सत्ता, भय या बल से नहीं, बल्कि सत्य, संवाद, शोध और जन-जागरण से आता है।

हमारा उद्देश्य:

मानव, प्रकृति और समस्त जीव-जगत के मध्य संतुलन स्थापित करना है।

हमारा संकल्प:

गौवंश की सुरक्षा।
धर्म का पुनरुत्थान।
दुष्टों का विनाश।
सज्जनों का उत्थान।
धर्म संस्थानों की स्थापना।

सहयोगी

19- किताब 'परांजलि' से एक कविता

हे भारत, आओ ऐसी दुनिया बनाने के लिए काम करें।
जहाँ आस्था बिना किसी डर के हो
और धर्म का सम्मान हो,
जहाँ मस्तिष्क ह्रदय की बात माने
और शरीर सीधा और अडिग रहे,
जहाँ ज्ञान का सम्मान हो और कमज़ोरों की रक्षा हो,
जहाँ दुनिया संकीर्ण सीमाओं में बँटी न हो,
और शब्द सच्चाई की गहराई से निकलें,
जहाँ लगातार कोशिशें पूर्णता की ओर बढ़ें,
और तर्क की साफ़ धारा
बेकार रीति-रिवाजों की सूखी रेत में खो न जाए,
जहाँ तुम मन को आगे ले जाओ
लगातार फैलती सोच और कर्म की ओर,
जहाँ धर्म का शासन हो,
और विनाशक काली अधर्म का नाश करे,
जहाँ जीवन स्वर्ग जैसा हो
और दुनिया असीम हो,
हे भारत, आओ ऐसी दुनिया बनाने के लिए काम करें।

***